

आध्यात्मिक-रहस्य गीताञ्जली

-वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

आचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव के आद्य मोक्षमार्ग प्रदर्शक, शिक्षा दाता व दीक्षा के प्रेरक व सान्निध्यदाता वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री विमलसागर जी गुरुदेव के जन्म शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष्य में

अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्री राजेश कुमार जी जीतमल जी जैन, ए-331, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा
2. संघस्थ क्षुल्लिका सुवीक्षमती माताजी की 10वीं दीक्षा जयंती के पुण्य स्मरण में नन्दा देवी प्रवीण कुमार जी नन्दौड़ द्वारा ज्ञान दान।

ग्रन्थांक-248

प्रतियाँ-500

संस्करण-2016

मूल्य-51/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

अलौकिक वृत्तिधारी आध्यात्मिक गुरुवर के अनुभव की महिमा

—श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : छोड़ो कल की बातें.....)

सुनो अनुभव की बातें...अनुभव की बात निरालीं...

आत्म अनुभवी कनक गुरु की...सुन लो व्यापक वाणी...

विश्व हितकारी...सर्वोदय वाणी...अन्त्योदय वाणी...कल्याणकारी...(ध्रुव)...

धर्म-दर्शन-विज्ञान को जो...जोड़ चुके हैंSSS

प्राचीन व आधुनिक ज्ञान के...प्रेरक जो हैंSSS

प्राचीन गुरुकुल के पूज्य...आचार्यवर हैंSSS

आधुनिक विज्ञान के गूढ़ प्रवक्ता जो हैंSSS

नवाचार है...नवोन्मेष है...हैं तात्कालिक ज्ञानीSSSविश्व हितकारी...(1)...

अलौकिक वृत्ति इनकी जो जन समझ न पातेSSS

आग्रही अनुभवहीन वे जन है होतेSSS

शोध-बोध करने वाले आत्मिक/(वैश्विक) विज्ञानीSSS

इनके चरणों में आकर नतमस्तक होतेSSS

अनुभवी ज्ञानी गुरुवर की...पाते व्यापक वाणीSSS विश्व हितकारी...(2)...

आओ हम सब सत्य-तथ्य का शोध करेंSSS

अपूर्व/(सम्यक्) अर्थों में हम ज्ञान का बोध करेंSSS

आध्यात्म (व) विज्ञान का समन्वय करेंSSS

पूरब से पश्चिम को जोड़ आधुनिक बनेंSSS

उदार सत्यग्राही बनकर...होंगे पुरोगामीSSS विश्व हितकारी...(3)...

देश-विदेश के वैज्ञानिक जन...यहाँ भी आतेSSS

भौतिक से लेकर आध्यात्मिक...ज्ञान है पातेSSS

अलौकिक गणित व ब्रह्माण्डीय विज्ञानSSS

बहुआयामी विषयों को जोड़ रूप ज्ञानSSS

ज्ञानी-विज्ञानी 'सुविज्ञ' जन...अनुभव रत्न है पातेSSS विश्व हितकारी...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 09.11.2015, मध्याह्न 1.50

समस्त वाद-विवाद पर वैश्विक आध्यात्मिक गुरुकुल

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : छोड़ो कल की बातें.....)

करो तथ्य की बातें...सत्य समन्वयकारी...

वैज्ञानिक गुरु कनकनन्दी की...समझो व्यापक/(आगम) वाणी...

हे ! आधुनिक...प्रगतिवादी...अनेकान्तवादी...उदारभावी...(स्थायी)...

आओ हम सब जिज्ञासु...विद्यार्थी बनेऽऽऽ

समग्र सत्यग्राही बनकर...शोध/(बोध) करेऽऽऽ

संकीर्ण वाद-विवाद...द्वंद्व से परेऽऽऽ

तात्त्विक ज्ञान से...परम सत्य का बोध करेऽऽऽ

आधुनिक विज्ञान व आगम-अनुभव की वाणी...अनेकान्तवादी...(1)...

विश्वविद्यालय स्वरूप...इनका गुरुकुल देखोऽऽऽ

प्राचीन से आधुनिक...ज्ञान-विज्ञान को सीखोऽऽऽ

आत्मा को परमात्मा बनाने की...शिक्षा/(विद्या) प्रमुखऽऽऽ

अन्य समस्त विषय ज्ञान...आनुषंगिकऽऽऽ

अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक के...परम सत्य के ज्ञानी...अनेकान्तवादी...(2)...

आओ हम सब...व्यापक दृष्टिकोण बनायेऽऽऽ

संकीर्ण पंथ-मत-भाषा...पूर्वाग्रह छोड़ेऽऽऽ

भेद-भाव बिन...स्व-स्व योग्यता अनुसारऽऽऽ

कनक गुरुकुल के...प्राथमिक विद्यार्थी बनेंऽऽऽ

ऐसे सरल 'सुविज्ञ' जन...प्रगतिशील बनें ज्ञानी...अनेकान्तवादी...(3)...

नन्दौड़, दिनांक 24.11.2015, रात्रि 10.02

आत्मान्वेषी 'कनक गुरु' की वन्दना

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : करता हूँ वन्दना....., आधा है चन्द्रमा.....)

करता हूँ वन्दना गुरुवर की, करता हूँ वन्दना गुरुवर की...

आत्मान्वेषी वैज्ञानिक तपस्वी की।। (घृ) करता हूँ...

प्रथम बार विमलसिंधु से मिले, विजयमती माँ से शिक्षा मिले।
विमलसूरि से प्रेरणा पाकर, मोक्षमार्ग में आगे चले।
श्रवण बेलगोला में, शुभ दिन आये, प्रथम मोक्षगामी के चरण मिले॥ (1)

कुन्धुसूरि ने संस्कार किये, नग्न दिगम्बर रूप धार लिये।
द्विशताधिक श्रमण-श्रमणी के, सान्निध्य में आप दीक्षा लिये।
भरतसागर गुरु, विद्यानन्दी गुरु, अभिनन्दनादि गुरु आशीष दिये॥ (2)

बाल्य-काल से तव तीन लक्ष्य, बनों नेता वैज्ञानिक या संत।
श्रमण बनकर ये तीन लक्ष्य, पूर्ण किये हुए आत्म मगन।
आगम ज्ञान, अध्यात्म ज्ञान, सभी विधा के ज्ञान प्राप्त किये॥ (3)

मम पुण्य उदय तब आया, जब शरणा में तेरे आया।
स्वाध्याय तपस्या हम भी कर रहे, आत्मज्ञान से परिचित हो रहे।
'मैं' को मुझमें, मेरे द्वारा पाऊँ, अंत में समाधि मरण वरूँ॥ (4)

नन्दौड़, दिनांक 21.11.2015, मध्याह्न 1.25

विश्व गुरु को प्रमाण

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : तिरलोक पति दाता सुख धाम.....(हरिओम शरण))
दुःख हरण गुरु समतामय हे ! सुख करण गुरु शान्तिमय हे !
विश्वगुरु ज्ञानी सुख-धाम, स्वीकारो मेरे परणाम², गुरु/(प्रभु)। धु.

चरण कमल का ध्यान धरूँ और नित नाम करूँ सुमिरन तेरा।
शरणा में तेरे आये गुरु, उद्धार करो गुरुवर मेरा।
करुणा के सागर तुम्हीं मार्गदर्शक को परणाम॥ स्वीकारो...(1)

आगम अध्यात्म का ज्ञान करे, और ध्यान करे शुद्धात्म का।
'मैं' में भी 'मैं' को पाने का, स्वाध्याय से हम ज्ञान करे।
गुरुदेव से देशना पाकर, मेरा हुआ दृढ़ श्रद्धान॥ स्वीकारो...(2)

सारे विश्व में अलौकिक हो, श्रमणों में तुम अद्वितीय हो।
शरणागत को अभय देते, सत्पात्र को ज्ञान-दान हो।
तेरे दरश को पाकर के, मिल जाता है पावन धाम॥ स्वीकारो...(3)

तुम ही मेरे मात-पिता व तुम ही मेरे बंधु सखा।

सबके अकारण बंधु तुम्हीं तुम में ही विश्व रूप लखा।

तुम्हरी निश्रा में ही 'मैं' से मिला, 'मैं' पाने का सुवत्सल प्रयास॥ स्वीकारो...(4)

नन्दौड़, दिनांक 17.11.2015, मध्याह्न 12.50

सर्वोदयी आध्यात्मिक श्रमणाचार्य

श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

-आर्यिका सुवत्सलमती

(लय : तुम दिल की धड़कन में.....)

अध्यात्मयोगी श्रुतपारंगत, इंद्रियजयी गुरुवर को नमन।

शिष्यों के शिक्षा दीक्षा दाता, पंचाचार पालक गुरु को नमन॥ धृ.

जिनके नेत्रों में करूणा भाव, कर्ण में श्रुत संपदा।

हृदय में जिन देव निवास, मति सम्मति ही सदा।

निर्द्वंद निर्वेद भाव युक्त, अप्रमत्त भाव सदा।

दूरदर्शी गंभीर वृत्ति, प्रमत्त भाव नहीं कदा॥ (1)

ध्यान-अध्ययन सतत करते, चिन्तन-मनन में लीन।

स्वाध्याय तप निरन्तर करते, आत्मध्यान में लीन।

महावीर व महाधीर, अनुभव ज्ञान के भंडारी।

अन्त्योदय की सदैव भावना, सर्वोदय के पुजारी॥ (2)

आत्मा का शोध-बोध करते, ज्ञान-विज्ञान के पारखी।

भारतीय संस्कृति के प्रशंसक, श्रुतरत्न के पारखी।

भारत भूमि ऋषि-मुनियों की, त्याग-तपस्या की भूमि।

विश्वगुरु भारत हमारा, पतित कर रहे क्यों भूमि॥ (3)

गुरुदेव को महान् पीड़ा, भारतीय क्यों भ्रष्टाचारी।

सतियों का यह देश हमारा, भ्रष्ट हो रही क्यों नारी?

भारत पूर्व में महान् था, महान् उसे बनाना है।

वर्तमान दुर्दशा देखकर, 'वत्सल हृदय' क्रंदन करे है॥ (4)

नन्दौड़, दिनांक 24.10.2015, रात्रि 9.30

आचार्य कनकनन्दी जी की भावात्मक पूजा

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : आ लौट के आज मेरे मित.....)

हमें दर्श दिशा दो गुरुवर, तुझे तेरे शिष्य बुलाते हैं।

तुझे दिल से बुलाते हैं आज, तुझे तेरे भक्त बुलाते हैं॥ धृ.

हृदय के पट मैं खोल चुका हूँ, मन सिंहासन पर विराजो।

आह्वान कर तेरी स्थापना करूँ, मुक्तिपथ में साथ रहो।

साम्य जल से पखारूँ चरण², तुझे तेरे शिष्य बुलाते हैं॥ (1)

आनंद-चंदन घीस कर लाया, चरण युगल में रचाएँ/(लगाऊँ)।

सात तत्त्व सम धवल अक्षत, मुट्टी भरके चढ़ाऊँ।

समयसार फूलों की माल, तुझे तेरे शिष्य चढ़ाते हैं॥ (2)

अनुभव रूपी नैवद्य थाल, आप हमें है खिलाले।

ज्ञान का दीप जलाकर गुरुवर, ध्यान का धूप महकाये।

निरमल भावों के फल², तुझे तेरे भक्त चढ़ाते हैं॥ (3)

आहारदानी श्रावक चौका लगावे, नवधा भक्ति में प्रवीण।

वैयावृत्ति से तव साधना निखारे, अभयदान में (भी) प्रवीण।

नित करते मन से आराधन², तुझे तेरे शिष्य ध्याते हैं॥ (4)

बहिरातमता छोड़ चुके हो, अंतर आतम तुम हो।

मौन साधना करके गुरुवर, स्वाध्याय तपस्वी बने हो।

परमातमा बनो गुरुराज, तुझे हम शीश नवाते हैं॥ (5)

नन्दौड़, दिनांक 15.11.2015, मध्याह्न 1.35

आध्यात्मिक 'मैं' के साधक वैश्विक गुरु

-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : धीर मन में धरो.....)

श्रद्धा प्रज्ञा धरोऽऽ संवेदनशील बनोऽऽऽ

स्वस्थ जीवन रखना है तो, आत्म चिन्तन करोऽऽऽ

धैर्यशाली समता के धारी बनो...

कनकनन्दी गुरुवर भजो सुबह शामSSS
वैश्विक वैज्ञानिक सूरि शांति के धामSSS
प्रज्ञा व श्रद्धा से दिखाके परिणामSSS
द्वय कर योग से करिये प्रणाम॥ धृ.

जो भी दर्शन करे मेरे गुरुदेव केSSS
उसने दरश पाये जैसे महावीर केSSS
उनके भावों को जो समझ पाते हैंSSS
वे ही आध्यात्मिक बोध को पाते हैंSSS
मन-वच-काय से करिये प्रणाम॥ कनकनन्दी...(1)

आगम का अध्ययन जब वे कराते हैंSSS
शुद्ध आत्म ध्यान (मैं) में वे रम जाते हैंSSS
'मैं' के दरश बिना कुछ भी न सार हैSSS
इसके बिना बाह्य क्रिया निस्सार हैSSS
स्व-तत्त्व प्राप्ति हेतु, करो आत्म ध्यान॥ कनकनन्दी...(2)

अध्यात्म-विज्ञान के गुरु है दीवानेSSS
देश-विदेश के विज्ञानी भी दीवानेSSS
निज को समझने पर खुलते मैं के खजानेSSS
अपने में अपने से ही बनते (है) सयानेSSS
'सुवत्सल' भाव से करे 'मैं' का ध्यान॥ कनकनन्दी...(3)

नन्दौड़, दिनांक 10.11.2015 'स्वरूप चौदस' मध्याह्न 12.45

मेरे सर्वस्व कनकनन्दी गुरुवर

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : तुम्हीं मेरे मंदिर तुम्हीं मेरी पूजा.....)
तुम्हीं मेरे दीपक तुम्हीं मेरी ज्योति। तुम्हीं रोशनी हो तुम्हीं मेरी आभा॥
तुम्हीं मेरे पंथ मैं तो पथिक। तुम्हीं मेरे प्राण तुम्हीं मेरी धड़कन॥
ज्ञान वैराग्य के प्रकाश स्तंभ। तत्त्वज्ञ तुम्हीं तत्त्व दृष्टा हो॥
बहुभाषाविद् हो आत्मज्ञ तुम्हीं। वीतराग सौंदर्य/(वैभव) के आप हो धनी॥

एकाग्रमना हो कला प्रवीण। संवेदनशील व आत्म रसिक हो॥
 करुणा सागर पर दुःख कातर। अज्ञजनों के ज्ञान दिवाकर॥
 आत्म सौरभ की गंध है तुममें। कोमल हृदयी महाकवि तुम॥
 गहन रहस्य के (आत्मज्ञाता)/मैं के हो ज्ञाता। ज्ञान चक्षु से करते आत्म दर्शन॥
 निर्विकार रूप समता के सागर। ज्ञानोपलब्धि से भरते हो गागर॥
 आप तो मेरे तात हो गुरुवर। वात्सल्यमयी मात हो गुरुवर॥
 दीपावली की रोशनी तुम हो। वीर निर्वाण के मोदक/(लड्डू) तुम हो॥
 ज्ञान का दीपक मेरा सतत जले। मुक्ति की राह मुझ अबोध को मिले॥
 गुरुवर की सुनूँ सतत वाणी। गुरु चरणों में जोड़ूँ मैं पाणी (हाथ)॥

नन्दौड़, दिनांक 08.11.2015, रात्रि 8.00

दीपोत्सव के पावन अवसर पर (धनतेरस की पूर्व रात्रि) श्री गुरुदेव को अभिनंदन/
 नमन।

निराडम्बर मेरे गुरुवर

-श्रीमती रंजना वीरेन्द्र जैन (ग.पु. कॉलोनी)

(चाल : गुरुवर तुमसे मिलने का.....)

कनकनन्दी चन्द्र सम हैं, भक्तगण सब सितारे हैं।

चन्द्रमा की रश्मि से, उज्ज्वल बन जगमगाते हैं॥ ध्रुव

गुरुवर का कहना है, निज (स्व) आत्मा में लीन रहो।

जग (को) सुधारने से पहले, स्व आत्मा का सुधार करो।

स्वयं जो सुधर जाओ, जग स्वयमेव सुधर जाये॥ कनकनन्दी...(1)

निराडम्बर मेरे गुरु, कहते आडम्बर न करो।

फैशन-व्यसनो से दूर रहो, वासनाओं का त्याग करो।

स्वाध्याय में लीन रहो, जीवन बगियाँ महक जाये॥ कनकनन्दी...(2)

समवशरण (जब) गुरु का लगे, दूर (दूर) से वैज्ञानिक आये।

सप्त तत्त्व की चर्चा से, आगम सिद्धांत पाये।

अमावस की रात में, चन्द्र पूनम दिखाया है॥ कनकनन्दी...(3)

गुरुवर कनकनन्दी जी की ज्ञान-महिमा

-श्रीमती रंजना वीरेन्द्र जैन (पु. कॉलोनी)

(तर्ज : मैं तुमको विश्वास दूँ.....)

जैन धर्म की शान हो, गुरुवर आप महान् हो।

अंतर मन में ऐसी ज्योति जगायेंगे।

कनकनन्दी में/(से) महावीर/(शुद्धात्मा) को पायेंगे/(जानेंगे)। (ध्रुव)

धर्म नगर के आप तो वैज्ञानिक हो,

नये-नये अनुसंधान कर रहे नित्य हो।

धर्म और विज्ञान का ऐसा नाता है,

जैसे तन में आतम-राम समाया है।

विश्व धर्म को जान लो, कहना गुरु का मान लो,

हर जीव में भगवान् नजर आ जायेंगे। कनकनन्दी में...(1)

निगोद से लेकर जीव की जो कहानी है,

बड़े-बड़े वैज्ञानिक ने गुरु से जानी है।

स्वाध्याय तप से 'केवलज्ञान' को पायेंगे,

निश्चय करके भेद-विज्ञान को मानेंगे/(पायेंगे)।

द्वेष भाव को त्याग दो, राग नहीं वैराग हो,

गुरु शरण में आतम-ध्यान लगायेंगे। कनकनन्दी में...(2)

स्वतंत्रता के सूत्र को समझाया है,

आत्म विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाया है।

कठिन से कठिन विषय सरल हो जाते हैं,

गुरुवर जब स्वभाषा में बोध कराते हैं।

इस जीवन को साज दो, एक नई आवाज दो,

सदियों से सोया आतम भाव जगायेंगे। कनकनन्दी में...(3)

म्हारा गुरुजी नो व्यक्तित्व ने कृतित्व

-आ. सुवत्सलमती

(तर्ज : नृत्य + गायन.....)

आव्या छे आव्या छे, नंदौड़ मा गुरुजी (म्हारा) आव्या छे²

म्हारा गुरुजी ने मुखड़ो जोवो², शेर थकी तेजस्वी लागे छे²॥ नन्दौड़...
 गज मस्तक मा उन्नत विचार², उन्नत भाग्य ना बनी छे²॥
 अनुशासन प्रिय म्हारा गुरुजी², प्रखर बुद्धि ना धनी छे²॥
 प्रकृति प्रेमी म्हारा गुरुजी², एटले जंगल मा घूम छे²॥
 बोलवा मा हुशार ने श्रवण शक्ति², गुण परिचायका गुणग्राही छे²॥
 एकांत साधना ने निस्पृह वृत्ति², उन्न नाक बताये छे²॥
 देश विदेश ना विद्वान् आवे², ने गुरु थकी ज्ञान पावे छे²॥
 गुरुजी म्हारा दीर्घायु होवे², सत् साहस ना धनी छे²॥
 गुरुजी ने तालु मा जो गोल छे², ब्रह्माण्ड न दर्शन कराये छे²॥
 म्हारा गुरुजी ना बत्तीस 32 दाँत², सत्य बात ही कहे छे²॥
 गुरुजी ना अँगूठा बहु लचीला², सहिष्णुता झरे छे²॥
 गुरुजी ना जोवो चौड़ी छाती², धैर्य साहस सिंह वृत्ति छे²॥
 अंतर्दृष्टि ने सूक्ष्मदृष्टि², आत्म साधना में लीन छे²॥
 जुग-जुग जीवो म्हारा गुरुजी², सुयश कीर्ति फैले छे²॥
 करूणासागर म्हारा गुरुजी², सबने वात्सल्य आपे छे²॥

नन्दौड़, दिनांक 04.11.2015, रात्रि 7.25

गुरुवर कनकनन्दी जी परोक्ष वन्दना

-आ. सुवत्सलमती

(चाल : कहीं दूर जब दिन ढल जाये.....(आनंद))
 कहीं दूर से/(जब) गुरु दिख जाये, मन मेरा पुलकित हो जाये।
 आनंद मनाये/फूला न समाये॥ धृ.
 कभी यूँ ही बैठे-बैठे वे याद आये, गदगद वाणी होये, नयना भर आये।
 तभी धीरे से, स्नेह से आके, आशीष दे पर, नजर ना आये²॥ कहीं दूर...(1)
 सदा करे आगम व, आतमा (मैं) की बातें/(चर्चा)।
 सदा करे गुरुवर, स्व (मैं) की ही बातें/(चर्चा)।
 राग-द्वेष ना, मोह न माया, स्वाध्याय करावे वो, मन में समाये²॥ कहीं दूर...(2)
 आतमा तो अनादि से कर्म आबद्ध। अनंत शक्ति फिर भी कर्म आबध्य।
 पुरुषार्थ कर, कर्म खपाऊँ, कर्मों से हो जाऊँ, पूर्ण स्वतंत्र²॥ कहीं दूर...(3)

बच्चों से भी निर्मल भाव धारी गुरुवर

-आ. सुवत्सलमती

(चाल : बच्चे मन के सच्चे.....)

गुरुवर! मन के सच्चे, सारे जग की आँखों के तारे।

ये है अलौकिक आध्यात्मिक, विज्ञानी गुरुवर न्यारे।। गुरुवर.....(धृ.)

स्वाध्याय करे चिन्तन करे, कर्मों के संग युद्ध करे।

कर्मनिर्जरा करके गुरुवर, मैं/(स्व) में ही रमण करे।

'मैं' में रहकर मैं को जाने, 'मैं' का ही अनुभव करे।। गुरुवर...(1)

नवजात शिशु सम दिग्म्बर, मन से भी है निराडम्बर।

ख्याति पूजा से दूर रहकर, आत्म प्रभावना ही करे।

इनकी निस्पृह वृत्ति देखकर, जग नतमस्तक होवे।। गुरुवर...(2)

स्व-संवेदन भाव धरे, दया करुणा मन में धरे।

पर की पीड़ा देख सुनकर, इनका मन भी रूदन करे।

आत्म स्वरूप में रमण करे, स्व-वात्सल्य भाव धरे।। गुरुवर...(3)

क्रोध व मान का काम नहीं, मोह-लोभ का नाम नहीं।

विभाव भावों से दूर रहकर, आत्म साधना में लीन रहे।

मौन व एकांत में रहकर, विश्व कल्याण भाव धरे।। गुरुवर...(4)

नन्दौड़, दिनांक 04.11.2015, मध्याह्न 12.25

मेरी कविताओं के विषय व उद्देश्य

(आत्महित व विश्व मंगलकारी 'कनक' की कविता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

मेरी कविताएँ न केवल गाने के हेतु, मनोरंजन या भीड़ जुटाने हेतु।

नाम कमाना या धन कमाने हेतु, मेरी कविताएँ सत्य/(तथ्य) कथन हेतु।।

मेरी कविताएँ न प्रतिस्पर्द्धा हेतु, छंद अलंकार या वाक् विलास हेतु।

परनिन्दा अपमान हेतु न मेरी कविता, समता-शांति हेतु है मेरी कविता।। (1)

कामुक श्रृंगार हेतु न मेरी कविता, संकीर्ण पंथ-मत परे मेरी कविता।

संकीर्ण राजनीति-भाषा-राष्ट्र से परे, मेरी कविताएँ सर्व बंधन परे।।

कोई माने या न माने (से) परे कविता, कोई गाये या न गाये परे कविता।
 कोई जाने या न जाने से परे कविता, आत्म-संबोधन स्वान्त सुखाय कविता॥ (2)
 भावना-अनुभव की अभिव्यक्ति कविता, कल्पना संवेदनशील मेरी कविता।
 आत्मविशुद्धि आत्मविकास की कविता, सनम्र सत्यग्राही जिज्ञासु वृत्ति कविता॥
 स्वाध्याय मनन हेतु बनी मेरी कविता, शुभोपयोग एकाग्रता हेतु बनी कविता।
 स्व-पर-विश्व मंगलकारी मेरी कविता, गुणग्राही उदारमन युत कविता॥ (3)
 अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा रिक्त, लंद-फंद-द्वंद रिक्त मेरी कविता।
 समीक्षा समन्वय युक्त मेरी कविता, सर्वोदय-अन्त्योदय भाव युक्त कविता॥
 अंधानुकरण नकल से रिक्त कविता, अज्ञान-मोह दूर हेतु बनी कविता।
 निष्पक्ष सापेक्ष दृष्टि युक्त कविता, धर्म-दर्शन-विज्ञान संयुक्त कविता॥ (4)
 प्राचीन-अर्वाचीन व पौर्वात्य-पाश्चात्य, शोध-बोध-खोज अनुभव से युक्त।
 विविध विधाओं से युक्त मेरी कविता, आत्महित हेतु 'कनक' बनाये कविता॥ (5)
 नन्दौड़, दिनांक 02.11.2015, रात्रि

दीपोत्सव के अवसर पर मेरा आत्म विश्लेषण व मूल्यांकन (शारीरिक रोगों के कारण मैं बाह्य तप-त्याग को कम करते हुए अंतरंग तप-त्याग को बढ़ा रहा हूँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., छोटी-छोटी गैया.....)
 आगम अनुभव आयुर्वेद व, मनोविज्ञान शरीर विज्ञान से।
 शिक्षा लेकर तप-त्याग में न्यूनाधिक कर रहा हूँ गुरुजनों से/(वैद्यजनों से)॥ (1)
 क्षुल्लक (1978) से लेकर साधु उपाध्याय, एलाचार्य व आचार्य (1996) तक।
 रहा हूँ अस्वस्थ निम्नोक्त कारणों से, जिससे परिवर्तन किया अभी तक॥ (2)
 अधिक जागना (18 घंटे अध्ययन) व कम सोना, अंतराय भी आये अधिकतर
 (20-22 वर्ष)।
 अध्ययन-अध्यापन व लेखन-प्रशिक्षण, कर रहा हूँ मैं अधिकतर॥ (3)
 योग्य आहार-विहार-निहार, निवास न मिले अधिकतर।
 प्रदूषण गंदगी व गर्मी-सर्दी का, प्रकोप भी रहा है अधिकतर॥ (4)

मक्खी मच्छर व खटमल कीटों के, प्रकोप सहा हूँ अनेक बार।
पूर्व उपार्जित असाता उदय से, अनेक रोग हुए हैं अनेक बार॥ (5)
देह में गर्मी (भी) बढ़ी पित्त भी बढ़ा, शारीरिक शक्ति भी हुई क्षीण।
रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण हुई, जिससे भी हुए रोग अनेक॥ (6)
अनेक (प्रायः 25) वर्षों तक पाटा न लिया, तेल मालिश वैयावृत्ति न कराया।
रसत्याग व अल्पाहार भी किया, कमण्डल उपकरणसह विहार (प्रायः 20 वर्ष)
किया॥ (7)

योग्य औषधि पथ्य न (सदा) मिले, सभी में सदा मैं निस्पृह रहा।
अपरिग्रह अनाग्रह अयाचक से, मौन व समता में लीन रहा॥ (8)
एसिडिटी बढ़ा देह ताप भी बढ़ा, वमन व चक्कर पसीना बढ़ा।
हैजा पीलिया मलेरिया हुआ, देह में जलन व थूक बढ़ा॥ (9)
पेट आँखों व दाँतों में भी दर्द, भोजन की मात्रा भी हुई कम।
अध्ययन-अध्यापन लेखन प्रशिक्षण, प्रवचन आदि में व्यवधान हुआ॥ (10)
जिससे मेरे गुरु कुंथुसागर आचार्य, सूरि विमलसागर-भरतसागर।
आचार्य विद्यानंद गुरुवर सहित, आर्यिका ज्ञानमती व (मेरे) शिष्य प्रचुर॥ (11)
वैद्य सुशील व प्रहलाद वैद्य, श्यामसुन्दर व शोभालाल वैद्य।
और भी अनेक डॉक्टर वैद्यों के, सुझाव से कर रहा हूँ स्वास्थ्य सुधार॥ (12)
पाटा (भी) लेता हूँ तेल भी लगाता हूँ, करता हूँ सदा शीतल उपचार।
शीतल स्वच्छ स्थान में रहता हूँ, सेवन करता हूँ पथ्य आहार॥ (13)
भ्रमण प्राणायाम योगासन करता हूँ, मध्याह्न में विश्राम रात्रि शयन।
नेतिक्रिया व स्फञ्ज (ठंडा सेक) भी करता हूँ, नहीं करता हूँ उपवास अल्पाहार॥ (14)
दूध घी व फल सब्जी भी लेता, बादाम अखरोट व मनुक्का।
केला नारियल व आम अँगूर, करता हूँ भी औषधिय उपचार॥ (15)
इसी से स्वास्थ्य में सुधार हो रहा, अंतरंग तप-त्याग भी बढ़ा।
ध्यान-अध्ययन व शोध-बोध-लेखन, शिविर-संगोष्ठी व चर्चा-प्रशिक्षण॥ (16)
समता-शांति व प्रभावना भी बढ़ी, देश-विदेशों में प्रभावना चली।
आत्मविशुद्धि एकाग्रता भी बढ़ी, 'कनक' की अंतरंग साधना बढ़ी॥ (17)

नन्दौड़, दिनांक 10.11.2015, मध्याह्न 1.40 (स्वरूप चौदस)

संदर्भ-

करोतु न चिरं घोरं तपः क्लेशासहो भवान्।

चित्त साध्यान् कषायारीन् न जयेद्यत्तदज्ञता॥ (212) आ.शा.

यदि तू कष्ट को न सहने के कारण घोर तप का आचरण नहीं कर सकता है तो न कर। परन्तु जो कषयादिक मन से सिद्ध करने योग्य है उन्हें भी यदि नहीं जीतता है तो वह तेरी अज्ञानता है। तपश्चरण में भूख आदि के दुःख को सहना पड़ता है, इसलिये यदि अनशन आदि तपों को नहीं किया जा सकता है तो न भी किया जाय। परन्तु जो राग, द्वेष एवं क्रोधादि आत्मा का अहित करने वाले हैं उनको तो भले प्रकार से जीता जा सकता है। कारण कि उनके जीतने में न तो तप के समान कुछ कष्ट सहना पड़ता है और न मन के अतिरिक्त किसी अन्य सामग्री की अपेक्षा भी करनी पड़ती है। इसीलिये उक्त राग-द्वेषादि को तो जीतना ही चाहिए। फिर यदि उनको भी प्राणी नहीं जीतना चाहता है तो यह उसकी अज्ञानता ही कही जायेगी।

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं।

जाणित्ता ते समणो वड्ढि जदि अप्पलेवि सो॥ (231) प्र.सार

यदि साधु आहार या विहार में देश को, काल को, मार्ग की थकान को, उपवास की क्षमता या सहनशीलता को तथा शरीर रूपी परिग्रह की दशा को इन पाँचों को जानकर वर्तन करता है वह बहुत कम कर्मबंध से लिप्त होता है।

जं सक्कड़ तं कीरड़ जं च ण सक्केइ तं च सघहणं।

केवलजिणेहिं भणियं सघहमाणस्य सम्मत्तं॥ (22) अ.पा.

जो कार्य किया जा सकता है वह किया जाता है और जिसका किया जाना शक्य नहीं है उसका श्रद्धान करना चाहिए। केवलज्ञानी जिनेन्द्र भगवान् ने श्रद्धान करने वाले पुरुषों को सम्यग्दर्शन कहा है।

बारसविधमिहिवि तवे सब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे।

णवि अत्थि णवि य होही सज्झायसमं तवोकम्मं॥ (409)

कुशल महापुरुष के द्वारा देखे गये अभ्यंतर और बाह्य ऐसे बारह प्रकार के भी तप में स्वाध्याय के समान अन्य कोई तप न है और न ही होगा।

सज्झायं कुव्वंतो पंचेदियसुवुडो तिगुत्तो य।

हवदि य एयग्गमणो विणएण समाहिओ भिक्खू॥ (410)

विनय से सहित हुआ मुनि स्वाध्याय को करते हुए पंचेन्द्रिय से संवृत और तीन गुप्ति से गुप्त होकर एकाग्र मन वाला हो जाता है।

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	अलौकिक वृत्तिधारी आध्यात्मिक गुरुवर के अनुभव की महिमा	
2.	समस्त वाद-विवाद पर वैश्विक आध्यात्मिक गुरुकुल	
3.	आत्मानुवेषी 'कनकगुरु' की वन्दना	
4.	विश्वगुरु को प्रणाम	
5.	सर्वोदयी आध्यात्मिक श्रमणाचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव	
6.	आचार्य कनकनन्दी जी की भावात्मक पूजा	
7.	आध्यात्मिक 'मैं' के साधक वैश्विक गुरु	
8.	मेरे सर्वस्व कनकनन्दी गुरुवर	
9.	निराडम्बर मेरे गुरुवर	
10.	गुरुवर कनकनन्दी जी की ज्ञान-महिमा	
11.	म्यारा गुरुजी नो व्यक्तित्व ने कृतित्व	
12.	गुरुवर कनकनन्दी जी परोक्ष वन्दना	
13.	बच्चों से भी निर्मल भावधारी गुरुदेव	
14.	मेरी कविताओं के विषय एवं उद्देश्य	
15.	दीपोत्सव के अवसर पर मेरा आत्म विश्लेषण व मूल्यांकन	

आध्यात्मिक रहस्य

1. पावन भावना व प्रार्थना
2. वन्दे तद्गुण लब्धये
3. आचार्यों के महान् गुणों की स्तुति
4. विभिन्न उपमा व विशेषणों से श्रम की स्तुति
5. स्वाध्याय व अध्यापन गुणयुक्त उपाध्याय की स्तुति
6. श्रमण ही निश्चय से रत्नत्रय-10 धर्म-9 देवता जीवन्त धर्म
7. स्वात्मा (मैं) के परिज्ञान से तत्काल व आगामी कालीन लाभ
8. स्वानुभव से ही शुद्धात्मा का यथार्थ कथन सम्भव
9. स्व-अस्तित्व से सिद्ध होता है विश्व का अस्तित्व
10. आध्यात्मिक में (से) ही परम विकास

11. सीमातीत मेरा आत्म धर्म
12. कर्ता व भोक्ता स्वयं जीव
13. करुणा तेरी अमृतधारा
14. वैयावृत्ति से तीन काल के सभी तीर्थकर आदि पूजित होते
15. अल्प पाप बंध कारक शुभ काम भी करणीय
16. अभव्य-पापी जीवों को आत्मज्ञान नहीं मिलता
17. कल्पना शक्ति से रचनात्मकता-प्रगतिशीलता-सफलता
18. मैं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या देखता हूँ
19. यथार्थ ज्ञान = अज्ञान निवृत्ति, हित प्राप्ति, अहित परिहार
20. मैं न निंद्य बनूँ न निन्दा करूँ
21. मैं प्रशंसनीय गुणी बनूँ व गुण-गुणी की प्रशंसा करूँ
22. अज्ञानी मोही के विपरीत भाव व व्यवहार
23. महान् बनने के सूत्र
24. मुझे 'मैं' मिल गया है
25. गुरुवर! मुझे 'मैं' का ज्ञान देना
26. आत्म संबोधन ।
27. मेरी भावना व विपरीत जीव प्रति मंगल कामना
28. आत्म संबोधन ॥
29. चातुर्मासकर्ता परिवार एक : उपलब्धियाँ अनेक
30. सकारात्मक-वर्णन : धर्मग्रंथों में सर्वाधिक
31. सभी संसारी जीव कर्माधीन व मुक्त ही स्वाधीन
32. मेरे (आ. कनकनन्दी) एकांत-मौन-समता-निस्पृहता के कारण
33. मेरे लक्ष्य मुझे अवश्य प्राप्त होगा
34. आध्यात्मिक एक : मुझे मिल रहे हैं लाभ अनेक

आध्यात्मिक-रहस्य पावन-भावना प्रार्थना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

प्रथमं-करणं-चरण-द्रव्यं नमः,

शास्त्राभ्योसो जिनपत्ति-नुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।

सदवृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम्।।

सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावनाचात्म-तत्त्वे।

सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः।।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पद-द्वये लीनम्।

तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्-यावन्-निर्वाण-सम्प्राप्तिः।।

मेरी भावना है मेरी प्रार्थना है, हे! जिनदेव तेरे चरणों में।

स्व-दोष निवारण स्वगुण-संवर्द्धन, हेतु प्रार्थना/(भावना) हर क्षण में।।

शास्त्रों का मैं करूँ अभ्यास, आत्म-अध्ययन हेतु सदा सर्वदा।

ज्ञान वैराग्य ध्यान मनन हेतु, चार प्रकार के अनुयोगों का।।

आपकी स्तुति करूँ मैं सदा, भावशुद्धि हेतु नव-कोटि से।

आपके गुण प्राप्ति हेतु सदा, करूँ मैं भक्ति भावशुद्धि से।।

श्रेष्ठ/(आर्य) पुरुषों की मैं संगति करूँ, ज्ञान-वैराग्य व समता हेतु।

उनसे प्रेरणा प्रोत्साहन पाकर, आत्मविशुद्धि करूँ मोक्ष के हेतु।।

उत्तम चारित्रधारी का (करूँ) गुणगान, दोष कथन में मैं रहूँ मौन।

गुणगान से करूँ, गुण संवर्द्धन, दोष कथन से न करूँ पाप बंधन।।

सभी के लिये (कहूँ) प्रिय हित वचन, अहित कटु न कभी कहूँ।

आत्म तत्त्व की ही मैं भावना भाऊँ, आत्म विस्मरण न कभी करूँ।।

ये सब भावना (मेरी) सतत रहे, जब तक मुझे न मिले मोक्ष।

उत्तम भावना हेतु प्रार्थना करूँ, जिससे 'कनक' को मिले मोक्ष।।

नन्दौड़, दिनांक 07.11.2015, रात्रि 10.00

वन्दे तद्गुण लब्धये

(भगवान् की भक्ति-पूजादि से भगवान् को नहीं,
परन्तु भक्त को ही होता है लाभ)

मूल सृजेता-आचार्य कनकनन्दी
सरल पद्यानुवाद-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : तू ही माता...तू ही पिता है...हे राम...हे राम.....)

भगवान् तो 'सच्चिदानन्द' होते (हैं) वन्दे...उन्हें तू क्या आनंद देगा? रे भक्त...आत्मन्...

उनकी भक्ति से तुझे आनंद मिले...ऐसे भाव से भक्ति करSSS रे भक्त...

'सत्य शिव सुन्दर' होते भगवान्...तू क्या उन्हें सुंदर बनायेSSS रे भक्त...

सत्य शिव सुन्दर बनने हेतु तू...उनकी आराधना करSSS रे भक्त...

'अनन्त वीर्यवान्' होते भगवान्...तू क्या उन्हें निर्भय करेगाSSS रे भक्त...

उनकी भक्ति से तुझे भय न होवे...ऐसी भावना तू करSSS रे भक्त...

'जन्म जरा मृत्यु' रहित भगवान्...प्रभु का संकट क्या हरे तूSSS रे भक्त...

जन्म जरा मृत्यु रहित होने हेतु...शिक्षा प्रभु से प्राप्त करSSS रे भक्त...

'ज्ञानानन्द रस' से संतृप्त भगवान्...उन्हें संतृप्त क्या करे तूSSS रे भक्त...

तू भी ज्ञानानन्द में/(से) संतृप्त हेतु...उनके समान बनSSS रे भक्त...आत्मन्...

'परम समरसी' होते भगवान्... 'पक्षपात शून्य' भी होते हैं...

राग-द्वेष-मोह भेदभाव शून्य...स्वयंभू-स्वयंपूर्ण होते हैं...

उनके गुणों की प्राप्ति हेतु...उनकी भक्ति सतत करे जा...

भगवान् तुझसे कुछ ना चाहे...तू भी उनके वैभव पाये जा...

समता शांति व पावन बनकर...यथार्थ पूजा का फल तू पायेगा...

उनके सम ही सच्चिदानन्द बनकर... 'कनक' भक्ति का फल पायेगा...रे भक्त...आत्मन्...

नन्दौड़, दिनांक 22.11.2015, मध्याह्न 2.52

आचार्यों के महान् गुणों की स्तुति

(आचार्य प्राज्ञ-आगमज्ञ-लोकज्ञ-अनिन्दक आदि गुणों से युक्त होते)
(आचार्य के अधिकांश गुण उपाध्याय व साधु में भी होते हैं)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की.....(शत-शत वंदन).....)

धन्य हे! आचार्य...धन्य हो तुम...कितने महान् गुण युक्त हो...

छत्तीस मूल गुण सहित होकर भी...पाठक (व) साधु गुण युक्त हो...(स्थायी)...

महान् प्राज्ञ हो! शास्त्रज्ञ तुम हो!...लोकज्ञता में प्रवीण हो...

ख्याति पूजा लाभ से विरक्त होकर...हित-मित-स्पष्ट बोलते हो...

महान् गुणी हो! प्रशमवान् हो!...प्रश्न पूर्व ही उत्तर जानते हो...

प्रश्नों को तुम सहने वाले हो!...अनिन्दक मनोहारी कथक हो...(1)...

समर्थवान् हो! ज्ञानवान् हो!...गुण-दोष ज्ञाता व लोकज्ञ हो...

तो भी गुणग्राही...दोषअपरिस्त्रावी/(अनिन्दक)...गुणनिधि तुम सूरीश्वर हो...

धर्मकथा/(परमागम) उपदेशक हो...विकथा व निन्दा से रिक्त हो...

द्रव्य क्षेत्र काल भाव अनुसार...उपदेश सम्यक् ही करते हो...(2)...

मन-वचन-काय व कृत कारितादि...नवकोटि से पावन भाव युक्त हो...

मोक्षमार्ग प्रवर्तन प्रतिबोधन में...सतत प्रयत्नशील रहते हो...

बुधजनों से भी वंदित होकर...अहंकार से आप रहित हो...

लोकेष्णा रहित लोकज्ञता सहित...मृदुता गुण से सहित हो...(3)...

आचार पालक आचरण प्रशिक्षक...शांति मर्यादा के पालक हो...

ज्ञान वैराग्य व समता क्षमा के...आप पालक उपदेशक हो...

निस्पृह निराडम्बर आत्मविशुद्धि में...आप तो सदा लीन रहते हो...

‘कनकनन्दी’ तो तव अनुयायी...आपको मेरा शत-शत वंदन...(4)...

उपाध्याय साधुओं में भी आपके...अनेक गुण होते हैं...

अष्टावीस (28) मूलगुण भी तीनों...परमेष्ठी में होते हैं...

प्रायश्चित्त व दीक्षा के अतिरिक्त...आप सम उपाध्याय होते हैं...

मौन साधना में तो साधु परमेष्ठी...आत्म-साधना करते हैं...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 11.11.2015, रात्रि 8.30 व प्रातः 8.42, वीर निर्वाणोत्सव

संदर्भ-

वद-समिदि-गुत्ति-जुत्ता मुत्ति-पहे ठाविया पुणो अण्णे।

अज्झावय-गुण-णिलया साहु-गुणेणावि संजुत्ता।। (4)

आचार्य व्रत समिति गुप्ति से सहित होते हैं, वे मुक्तिपथ में अन्य को भी स्थापित करते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी के गुणों से सहित होते हैं व साधु गुण से भी संयुक्त होते हैं।

उत्तम-खमाए पुहवी पसण्ण-भावेण अच्छ-जल-सरिसा।

कम्मिंधण-दहणादो अगणी वाऊ असंगादो।। (5)

उत्तम क्षमा में पृथ्वी के समान आचार्य होते हैं, प्रसन्न भाव में स्वच्छ जल की सरिता के समान होते हैं, कर्मरूपी ईंधन को दहन करने के लिए आचार्य अग्नि के समान होते हैं व वायु के समान निसंग (परिग्रह रहित, निर्ग्रथ व अनासक्त) होते हैं।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।

प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।।

प्रायः प्रश्रसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया।

ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः।। (5) आ.पृ.4

जो त्रिकालवर्ती पदार्थों को विषय करने वाली प्रज्ञा से सहित है, समस्त शरीर के रहस्य को जान चुका है, लोकव्यवहार से परिचित है, अर्थलाभ और पूजा प्रति आदि की इच्छा से रहित है, नवीन-नवीन कल्पना की शक्ति रूप अथवा शीघ्र उत्तर देने की योग्यता रूप उत्कृष्ट प्रतिभा से सम्पन्न है, शांत है प्रश्न करने के पूर्व में ही प्रश्न उपस्थित होने की संभावना से उसके उत्तर को देख चुका है, प्रायः अनेक प्रश्न के प्रश्नों के उपस्थित होने पर उनको सहन करने वाला है अर्थात् न तो उनसे घबराता है और न ही उत्तेजित होता है, श्रोताओं के ऊपर प्रभाव डालने वाला है, उनके चित्त को आकर्षित करने वाला अथवा उनके मनोगत भाव को जानने वाला है, तथा उत्तमोत्तम अनेक गुणों का स्थानभूत है, ऐसा संघ का स्वामी आचार्य दूसरों की निन्दा न करके स्पष्ट एवं मधुर शब्दों में धर्मोपदेश देने का अधिकारी होता है।

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने।

परणतिरूरुद्द्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ।।

बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मदुताऽस्पृहा।

यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्।। (6)

जिसके परिपूर्ण श्रुत है अर्थात् जो समस्त सिद्धांत का जानकार है, जिसका चरित्र तथा मन, वचन व काय की प्रवृत्ति पवित्र है, जो दूसरों को प्रतिबोधित करने में प्रवीण है, मोक्षमार्ग के प्रचार रूप समाचीन कार्य में अतिशय प्रयत्नशील है, जिसकी अन्य विद्वान् स्तुति करते हैं तथा जो स्वयं भी विशिष्ट विद्वानों की प्रशंसा एवं उन्हें नमस्कार आदि करते हैं, जो अभिमान से रहित है, लोक और लोकमर्यादाओं के जानकार हैं, सरल परिणामी हैं, इस लोकसंबंधी इच्छाओं से रहित हैं, तथा जिसमें और भी आचार्य पद के योग्य गुण विद्यमान है, वही हेयोपादेय विवेकज्ञान के अभिलाषी शिष्यों का गुरु हो सकता है।

“विभिन्न उपमा व विशेषणों से श्रमण की स्तुति” (विभिन्न पशु व भौतिक वस्तुओं से श्रमण की उपमा)

—आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की...(शत-शत वंदन...), सायोनारा.....)

धन्य हे ! गुरुवर...धन्य हो तुम...कितने विशेषण सहित हो...

अनेक श्रेष्ठ विशेषणों के...भाव से आप सहित हो...(ध्रुव)...

समुद्र के सम गम्भीर हो...सुमेरू के सम अचल हो...

सूर्य सम तेजस्वी हो...चन्द्र के सम शीतल हो...

वायु के सम निःसंग हो...चन्दन के सम सुगन्ध हो...

सिंह के सम पराक्रमी हो...गज के सम स्वाभिमानी हो...अनेक...(1)

बैल के समान भद्र हो...मृग के समान सरल हो...

पशु (गो) सम निरीह गोचरी...भ्रामरी वृत्ति सहित हो...

मणि के सम प्रभापुञ्ज हो...क्षिति के सम सहिष्णु हो...

सर्प सम अनियत वासी हो...आकाश सम निरालम्बी/(निर्लिप्त) हो...(2)

यथाजात बालक सम नम्र...सरल-सहज दिगम्बर हो...

पदविहारी-कमण्डलधारी...मयूर पिच्छी सहित हो...

पाणिपात्र आहारी (शुद्ध) शाकाहारी...अयाचक वृत्ति सहित हो...

केशलौचकारी स्वावलंबनधारी...धीर-वीर व गंभीर हो...अनेक...(3)

धैर्य जिनके पिता...क्षमा है माता...शान्ति ही जिनकी गृहिणी...

सत्य है पुत्र...दया ही भगिनी...भ्राता है मन-संयम...

शय्या है भूमितल...दिशा ही वसन...ज्ञान अमृत है भोजन...

भूषण रत्नत्रय...मोक्ष लक्ष्य...वैभव है आकिञ्चन्य...अनेक...(4)

ऐसे विविध गुण अलौकिक...अनुपम सह होते श्रमण गुरु...

आप साक्षात् जीवन्त धर्म...दशधा धर्म भी आप गुरु...

नवविध देवता तेरे ही रूप...विविध कार्य-कारण सम्बन्ध...

तव स्वरूप व भक्ति मैं चाहूँ... 'कनक' श्रमण का अनुबन्ध...अनेक...(5)

नन्दौड़, दिनांक 18.11.2015, रात्रि 8.00

सन्दर्भ-

धैर्य्य यस्य पिता क्षमाश्च जननी शान्तिश्चिर गृहिणी।

सत्य सुनूरयं दया च भगिनी भ्रातः मनः संयमः।

शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्।

ये ते यस्य कुटुम्बिनी वद सखे कस्मात् भीतो योगिनः॥ (रत्नत्रयभूषणम्)

(गाय के समान (गोचरी) भोजन (शाकाहार मोटा, रेशेदार भोजन) करना चाहिए, इस विषय में कुछ लोग समझ न पाये, इस कारण यह कविता बनी।)

सीह-गय-वसह-मिय-पसु-मारुद-सूरुवहि-मंदरिदु-मणी।

खिदि-उरगंबर-सरिसा परम-पय-विमग्गया साहू॥३३॥

सकल कर्म भूमीधूतपत्रेभ्यस्त्रिकालगोचरेभ्यः साधुभ्यो नमः। धवला, पृ.51

'गमो लोए सव्वसाहूणं' लोक अर्थात् ढाई द्वीपवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार हो। जो अनंत ज्ञानादिरूप शुद्ध आत्मा के स्वरूप की साधना करते हैं उन्हें साधु कहते हैं। जो पाँच महाव्रतों को धारण करते हैं, तीन गुप्तियों से सुरक्षित हैं, अठारह हजार शील के भेदों को धारण करते हैं और चौरासी लाख उत्तर गुणों का पालन करते हैं वे साधु परमेष्ठी होते हैं।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी या उन्नत, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह गोचरी-वृत्ति करने वाले, पवन के समान निःसंग या सब जगह बिना रुकावट के विचरने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या सकल तत्त्वों के प्रकाशक, उदधि अर्थात् सागर के समान गंभीर, मन्दराचल अर्थात् सुमेरु-पर्वत के समान परीषह और उपसर्गों के आने पर अकम्प और अडोल रहने वाले, चन्द्रमा के समान शांतिदायक, मणि के समान प्रभा-पुंजयुक्त, क्षिति के समान सर्व प्रकार की बाधाओं को सहने वाले, उरग अर्थात् सर्प के समान दूसरे के

बनाये हुए अनियत आश्रय-वसतिका आदि में निवास करने वाले, अम्बर अर्थात् आकाश के समान निरालंबी या निर्लेप और सदाकाल परमपद अर्थात् मोक्ष का अन्वेषण करने वाले साधु होते हैं। संपूर्ण कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए त्रिकालवर्ती साधुओं को नमस्कार हो।

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः,

स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।

इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धै,

र्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।। (नियमसार, पृ.18)

‘अभिमत फल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान है, वह सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से होता है और सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है, इसलिये उनके प्रसाद से ही इष्ट-मोक्ष की सिद्धि होने से वे आप्त प्रबुद्ध ज्ञानी जनों के द्वारा पूज्य होते हैं क्योंकि साधुजन किये हुए उपकार को कभी नहीं भूलते हैं।’

स्वाध्याय व अध्यापन गुण युक्त उपाध्याय की स्तुति

(स्व-पर मत ज्ञाता व तात्कालीन ज्ञान-विज्ञान युक्त उपाध्याय)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की...(शत-शत वंदन.....))

धन्य उपाध्याय! धन्य हो तुम...कितना ज्ञानदान करते हो...

पच्चीस मूलगुण सहित होकर...अध्ययन-अध्यापन करते हो...धन्य...(स्थायी)...

प्रथमानुयोग व करणानुयोग...चरणानुयोग (व) द्रव्यानुयोग मय...

ग्यारह अंग व चौदह पूर्व का...अध्ययन-अध्यापन सहित हो...

स्व-पर मत व तात्कालिक ज्ञान...विज्ञानों से अभी सहित हो...

दीक्षा व प्रायश्चित्त से अतिरिक्त...आचार्य के गुण सहित हो...(1)...

आगम-अनुभव तात्कालीन ज्ञान सह...लोकज्ञता से भी युक्त हो...

साधु-साध्वी-मुमुक्षु श्रावक व...भव्यों को ज्ञानदान करते हो...

अनेकान्तात्मक ज्ञान संपदा को...स्याद्वाद पद्धति से कहते हो...

निन्दा-चुगली-अपमान रहित...हित-मित-सत्य कहते हो...(2)...

शान्त-गम्भीर-उदार गुणयुक्त...समता-सहिष्णु सहित हो...

सत्य गवेषी-आत्मानुशासी...प्रशम-संवेग सहित हो...

समीक्षा-समन्वय-विश्लेषण द्वारा...द्रव्य व तत्त्व के ज्ञाता/(उपदेष्टा) हो...
तुम्हारे गुणों का अनुयायी 'कनक'...शत-शत वंदन तुमको हो...(3)...

नन्दौड़, दिनांक 12.11.2015, मध्याह्न 12.05, नव संवत्सर (वीर निर्वाण)

श्रमण ही निश्चय से रत्नत्रय-10 धर्म-9 देवता जीवन्त धर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया.....)

रत्नत्रयधारी समता साधक मुमुक्षु, श्रमण होते हैं जीवन्त धर्म।

ख्याति पूजा लाभ संक्लेश रहित, ध्यान-अध्ययन में रत श्रमण॥

“वस्तु स्वभावमय होता है धर्म”, तथाहि “न धर्मो धार्मिकेर्विना”।

रत्नत्रय से पवित्र होते हैं श्रमण, मोक्ष न मिले श्रमण बिना॥

“साधुनां दर्शन पुण्य है”, “तीर्थभूताहि होते हैं साधवः”।

“कालेन फलन्ति तीर्थः” है किन्तु, “सद्यः फलप्रद है साधु समागमः” ॥ (1)

श्रमण ही बनते हैं अरिहन्त, तथाहि अन्त में बनते हैं सिद्ध।

अतः पञ्च परमेष्ठी श्रमण ही बनते, मोक्षमार्ग व मोक्ष पर्यन्त॥

पञ्च महाव्रत पञ्च समिति त्रिगुप्ति, उत्तम क्षमादि होते हैं श्रमण धर्म।

नव देवता षट् आयतन भी होते हैं, प्रकारान्तर रूप में श्रमण॥ (2)

रत्नत्रय तो आत्मा का स्वभाव, आत्मा को छोड़ न अन्यत्र सम्भव।

रत्नत्रय ही है मोक्षमार्ग व, इसकी पूर्णता ही होता है मोक्ष॥

ये सब चैतन्यमय होने से, इनसे युक्त श्रमण निश्चय चैत्य।

चैत्य का निवास होता है श्रमण में, अतएव श्रमण ही चैत्यगृह॥ (3)

श्रमण के आधीन होते हैं कषाय, अतः श्रमण ही निश्चय आयतन।

श्रमण के आधीन मन वचन काय, अतः मुनि के देह ही आयतन॥

निश्चय से ये सब यथार्थ से होते, व्यवहार से होते चैत्य/(मूर्ति) आदि भी।

भावनापूर्वक मंत्र संस्कार से धातु, पाषाण आदि के चैत्य आदि भी॥ (4)

निश्चय-व्यवहार व नाम-स्थापना, द्रव्य-भाव रूप से सत्य जानकर।

आत्मा को परमात्मा बनाना ही होता, परम लक्ष्य अन्य सभी हैं उपकार॥

यथार्थ के बिना केवल प्रतीक से, नहीं मिलता है परम मोक्ष।

मोक्ष हेतु बाह्य-अंतरंग चाहिये, मोक्ष ही 'कनक' का अंतिम लक्ष्य॥ (5)

तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।

जस्स य दंसण णाणं अस्थि धुवं चयणाभावो॥ (17) बोध प्राभृत

उन जिनबिम्ब रूप आचार्य परमेष्ठी को प्रणाम करो, सब प्रकार की पूजा करो, उनके प्रति विनय व वात्सल्य भाव प्रगट करो जिनके कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान तथा निश्चित रूप से चेतना भाव विद्यमान है।

(विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत 'मैं' गीताजंली, 'पूजा से मोक्ष-पुण्य तथा पाप भी' व 'बोध पाहूँ व समयसार' 'प्रवचनसार' का अध्ययन करें।)

मणवयणकायदव्वा आसत्ता जस्स इंदिद्या विसया।

आयदणं जिणमग्गे णिद्धिं संजयं रूवं॥ (5) बोध प्राभृत

मन वचन काय रूप द्रव्य तथा इन्द्रियों के विषय जिससे संबंध को प्राप्त हैं अथवा जिसके अधीन हैं, ऐसे संयमी मुनि का शरीर जिनागम में आयतन कहा गया है।

मय राय दोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।

पंच महव्यधारी आयदणं महरिसी भणियं॥ (6)

मद राग द्वेष मोह क्रोध व लोभ जिसके आधीन है तथा जो पञ्च महाव्रतों को धारण करने वाले हैं, ऐसे महर्षि आयतन कहे गये हैं।

सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धं ज्ञाणस्स णाणजुत्तस्स।

सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं॥ (7)

विशुद्ध ध्यान से सहित एवं केवलज्ञान से युक्त जिस श्रेष्ठ मुनि के निजात्म स्वरूप सिद्ध हुआ है अथवा जिन्होंने छह द्रव्य, सात तत्त्व, नव पदार्थ अच्छी तरह जान लिए हैं, उन्हें सिद्धायतन कहा है।

बुद्धं जं वोहंतो अप्पाणं चेइयाइं अण्णं च।

पंच महव्वय सुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं॥ (8)

जो ज्ञान युक्त आत्मा को जानता हो, दूसरे भव्य जीवों को उसका बोध कराता हो, पाँच महाव्रतों से शुद्ध हो तथा स्वयं ज्ञानमय हो, ऐसे मुनि को चैत्यगृह जानो।

चेइय बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।

चेइहरं जिणमग्गे छक्काय हियंकरं भणियं॥ (9)

जो चैत्यगृह के प्रति दुष्ट प्रवृत्ति करता है, उसे वह बंध व उसके फलस्वरूप दुःख उत्पन्न करता है और जो चैत्यगृह के प्रति उत्तम प्रवृत्ति करता है, उसे वह मोक्ष तथा उसके फलस्वरूप सुख प्रदान करता है। जिनमार्ग में चैत्यगृह को षट्कायिक जीवों का हितकारी कहा गया है।

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।

णिगंथ वीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा।। (10)

सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के द्वारा शुद्ध निर्दोष चारित्र को धारण करने वाले तीर्थंकर की प्रतिमा स्वशासन व परशासन की अपेक्षा दो प्रकार की है, अजंगम रूप है-गति रहित है, निर्ग्रन्थ तथा वीतराग है। जिनमार्ग में ऐसी प्रतिमा मानी गई है।

जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।

सा होइ वंदणीया णिगंथा संजदा पडिमा।। (11)

जो निरतिचार चारित्र का पालन करते हैं, जिनश्रुत को जानते हैं, अपने योग्य वस्तु को देखते हैं तथा जिनका सम्यक्त्व शुद्ध है, ऐसे मुनियों का निर्ग्रन्थ शरीर जंगम प्रतिमा है। वह वंदना करने योग्य है।

जिणविम्बं गाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।

जं देइ दिक्ख सिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा।। (16)

जो ज्ञानमय हैं, संयम से शुद्ध हैं, अत्यंत वीतराग हैं तथा कर्मक्षय में कारणभूत शुद्ध दीक्षा और शिक्षा देते हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी जिनबिम्ब हैं।

ज्ञानकाण्डे क्रियाकाण्डे चातुर्वर्ण्यपुरः सरः।

सूरिर्देव इवाराध्यः संसाराब्धितरण्डकः।। (सोमदेव सूरि)

जो ज्ञानकाण्ड व क्रियाकाण्ड में शिक्षा व दीक्षा में ऋषि, यति, मुनि व अनगार इन चार प्रकार के मुनियों के अग्रसर हैं तथा संसार रूपी समुद्र से पार करने के लिए नौका के समान हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी देव के समान आराधना करने के योग्य हैं।

तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।

अरहंतमुद्दा ऐसा दायारी दिक्खसिक्खा य।। (18) बोध प्राभूत

जो तप व्रत और गुण से शुद्ध हैं, वस्तु स्वरूप को जानते हैं तथा शुद्ध सम्यक्त्व के स्वरूप को देखते हैं, ऐसे आचार्य ही अरहन्त मुद्दा हैं-जिनबिम्ब हैं। यह अरहन्त मुद्दा दीक्षा व शिक्षा को देने वाली है।

दढसंजममुद्दाए इंदियमुद्दा कसायदढमुद्दा।

मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया।। (19)

जो संयम की दृढ़ मुद्रा से सहित हैं, जिसमें इन्द्रियों का मुद्रण संकोच है, जिसमें कषायों का दृढ़ मुद्रण-नियंत्रण है एवं जो सम्यग्ज्ञान से सहित हैं, ऐसी मुनिमुद्रा ही जिनमुद्रा है। जिनशासन में यही जिनमुद्रा कही गई है।

नन्दौड़, दिनांक 30.10.2015, रात्रि 8.20

स्वात्मा (मैं) के परिज्ञान से तत्काल व आगामी कालीन लाभ

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : तुम दिल की धड़कन....., छोटी-छोटी गैया.....)

जब होता परिज्ञान श्रद्धा प्रज्ञा से, आगम अनुभव व विविध नयों से/(गुरुपदेश से)।

निश्चय से मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनंद, कर्मबंध से बना हूँ संसारी जीव॥ (1)

शक्ति रूप से अभी भी हूँ सच्चिदानंद, स्वयंभू सनातन व अनादि-अनिधन।

मौलिक स्वतंत्र हूँ मैं स्वयं में पूर्ण, अनंत गुणयुक्त हूँ मैं चैतन्यपूर्ण/(अमूर्तमय)॥ (2)

इसी से परिज्ञान हो जाता अनात्मभाव, तन-मन-इन्द्रियादि भी न मेरा स्वभाव।

राग-द्वेष-मोहादि न मम स्वरूप, ये सब कर्मजनित है विभाव/(अशुद्ध) रूप॥ (3)

तथाहि सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि आदि, शत्रु-मित्र भाई-बंधु कुटुम्ब आदि।

सर्व सचित्त-अचित्त मिश्र परिग्रह, नहीं है ये सभी मेरा शुद्ध स्वभाव॥ (4)

इसी से भाव में होता महान् परिवर्तन, आत्म उपलब्धि का होता लक्ष्य महान्।

सांसारिक (क्षुद्र) उपलब्धि का न होता लक्ष्य, राग-द्वेष-मोहादि से होता विरक्त

/(विमुख)॥ (5)

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि में न होता मोह, होती है श्रद्धा व प्रज्ञा विवेक सह।

भोगाकांक्षा व निदान से होता विरक्त, मैत्री-प्रमोद कारुण्य व माध्यस्थ चित्त॥ (6)

प्रशम अनुकम्पा व आस्तिक्य संवेग, उदार सहिष्णु अनेकांत स्वभाव।

संवेदनशीलता न होती आध्यात्म निष्ठा, भौतिक उपलब्धि से न माने प्रतिष्ठा॥ (7)

सकारात्मक विचार अति महान् होता, शुद्ध-बुद्ध परमात्मा होने का होता।

सांसारिक हानि-लाभ से परे हो जाता, दीन-हीन-अहंकार से परे हो जाता॥ (8)

पर से अप्रभावित आत्मविश्वासी होता, समता-शांत व सहिष्णु भी होता।

संक्लेश-द्वंद्व से भी रहित होता, आत्म संतोषमय आनंद होता॥ (9)

सातिशय पुण्य का भी आस्रव होता, अशुभ भाव का भी निरोध होता।
 श्रमण बनकर सर्व कर्म क्षय करता, अनंत अक्षय सुख को प्राप्त करता॥ (10)
 अतएव आध्यात्मिक ही परम श्रेय, सर्व सुख प्राप्ति के श्रेष्ठतम उपाय।
 आत्मा/(स्वयं) की उपलब्धि ही है परिनिर्वाण, इसी हेतु 'कनकनन्दी' बना श्रमण॥ (11)
 नन्दीड़, दिनांक 04.10.2015, रात्रि 1.10

संदर्भ-

गुरुपदेशादभ्यासात्संवित्तैः स्वपरान्तरम्।

जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम्॥ (33) इष्टे.

जो गुरु के उपदेश से अभ्यास करते हुए यह आत्मा, उत्कृष्ट एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है और इसी तरह मन तथा वाणी के अगोचर अथवा वचनों से भी नहीं कहे जाने वाले स्वाधीन आनंद को प्राप्त कर लेता है।

तदेवानुभवंश्चायमेकाग्रं परमृच्छति।

तथात्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरम्॥ (170) तत्त्वानुशा.

उस आत्मा का अनुभव करता हुआ यह आत्मा, उत्कृष्ट एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है और इसी तरह मन तथा वाणी के अगोचर अथवा वचनों से भी न कहे जा सकने वाले स्वाधीन आनंद को प्राप्त कर लेता है।

स्वस्मिन् सदाभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।

स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥ (34) इष्टे.

स्वयं स्वस्मिन् सदाभिलाषित्वात् अभीष्टज्ञापकत्वतः हितप्रयोक्तृत्वात् आत्मनः आत्मा एवं गुरु अस्ति।

जो सत् का कल्याण का वांछक होता है, चाहे हुए हित के उपायों को जतलाता है तथा हित का प्रवर्तक होता है, वह गुरु कहलाता है। जब आत्मा स्वयं ही अपने में सत् की कल्याण की यानि मोक्ष-सुख की अभिलाषा करता है, अपने द्वारा चाहे हुए मोक्ष-सुख के उपायों को जतलाने वाला है तथा मोक्ष-सुख के उपायों में अपने आपको प्रवर्तन कराने वाला है, इसलिये अपना (आत्मा का) गुरु आप (आत्मा) ही है।

यथा यथा समायांति संवित्तो तत्त्वमुत्तमम्।

तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि॥ (37) इष्टे.

ज्यों-ज्यों संवित्ति (स्वानुभव) में उत्तम तत्त्वरूप का अनुभवन होता है, त्यों-त्यों उस योगी को आसानी से प्राप्त होने वाले भी विषय अच्छे नहीं लगते।

स्वानुभव से ही शुद्धात्मा का यथार्थ कथन संभव (शुद्धात्मा का यथार्थ कथन स्वानुभव बिना अन्य उपायों से सम्यक् नहीं/प्रामाणिक नहीं!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

सर्वज्ञ कथित...आगम लिखित...स्व-शुद्ध आत्मा का होता अनुभव ज्ञान...

अनुभव ज्ञान ही...आत्म प्रत्यक्ष होता...वह ज्ञान होता है...भावश्रुत ज्ञान...(ध्रुव)...

अनुभव बिना केवल आगम से...नहीं होता है भावश्रुत ज्ञान...

भावश्रुत बिना आगम ज्ञान भी...होता है निश्चय से द्रव्य श्रुतज्ञान...

द्रव्य श्रुतज्ञान होता है पौद्गलिक...शब्द अक्षरमय भौतिक ज्ञान...

अथवा केवल होता है मतिज्ञान...केवल मतिज्ञान से न होता आत्मज्ञान...(1)...

मिश्री का अनुभव न होता मिश्री शब्द से...पढ़ो-सुनो या गुणगान करो...

आत्म-अनुभव न होता 'आत्मा' शब्द से...पढ़ो-सुनो या गुणगान करो...

मिश्री चखने से होता है मीठा ज्ञान...आत्मज्ञान होता है अनुभव से...

अनुभव बिना आत्मा का वर्णन...सही न होता है शब्द ज्ञान से...(2)...

तोता के समान या टेप के समान...आत्मा का वर्णन होता यांत्रिक सम...

ऐसा वर्णन न होता पूर्णतः सत्य...न अनुभवगम्य-आत्म प्रत्यक्ष...

गणधर से लेकर आचार्य तक भी...आगम व अनुभव से करते कथन...

स्व-अनुभव से कथन करने पर ही...प्रामाणिक सह होता है कथन...(3)...

स्वानुभव रहित जो कथन होता...शुद्धात्म स्वरूप का न आत्म प्रमाण...

आत्म प्रमाण बिना शुद्धात्मा कथन...नहीं है यथार्थ से प्रत्यक्ष प्रमाण...

आत्मानुभव बिना आत्मा का ज्ञान...नहीं होता है इन्द्रिय ज्ञान से...

इन्द्रियाँ केवल स्थूल जड़ जानती...अमूर्त आत्मा को नहीं जानती...(4)

अतएव शुद्धात्मा के कथन समय में...आत्मानुभव भी होता है प्रमुख...

अतः स्व-अनुभव का भी कथन...करते हैं आत्मानुभवी श्रमण...

यह कथन नहीं है अभिमानपूर्ण...यह तो 'सोऽहं' 'अहं' पूर्ण स्वाभिमान...

शुद्धात्मा कथन या ध्यान कथन में...ऐसा कथन ही है प्रामाणिक कथन...(5)...

अन्यथा तो शुद्धात्मा कथन सभी...होगे व्यापार या राजनीति सम...
लौकिक व्यवहार या सामाजिक सम...इतिहास पुराण या कानून सम...
 अज्ञानी मोही व रागी द्वेषी कामीजन...नहीं जानते हैं आत्मानुभव ज्ञान...
अहंकार-ममकार में लिप्त जन...नहीं जानते 'सोऽहं' व 'अहं' ज्ञान...(6)...
 आत्मानुभव न होता है भौतिक वस्तु...न बाहर से प्राप्त होने की वस्तु...
आत्मानुभव होता है स्वयं का गुण...स्वयं में स्वयं द्वारा प्राप्त ये गुण...
 आत्मानुभव होता है अमूर्तिक ज्ञान...सच्चिदानंदमय स्वयं/(मैं) का ज्ञान...
 रत्नत्रय व समता से युक्त ज्ञान...'कनकनन्दी' का स्व-शुद्धात्मा ज्ञान...(7)...
 आत्मानुभव ही है सम्यक् ज्ञान...समता-शांति का यह निधान...
 इसी से बढ़ता है आत्मानुशासन...इन्द्रिय-कषायों का होता नियंत्रण...
 संसार शरीर/(भोग) से होता वैराग्य...ख्याति पूजा लाभ से विरक्त भाव...
 ध्यान-अध्ययन-मनन-चिंतन में/(से)...होता है आध्यात्मिक ज्ञान अपूर्व...(8)...

नन्दौड़, दिनांक 06.11.2015, रात्रि 9.40

संदर्भ-

सत्थं णाणं ण हवदि जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि।
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा बेत्ति।। (390) समयसार
 सद्दो णाणं ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि।
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा बेत्ति।। (391)
 रे! शास्त्र है नहिं ज्ञान, क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं
 इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु शास्त्र अन्य प्रभु कहे।।
 रे! शब्द है नहिं ज्ञान, क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं।
 इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु शब्द अन्य प्रभु कहे।।

गाथा- तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
 यदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं न घेत्तव्वं।। (5) समयसार
 छाया- तमेकत्त्व विभक्तं दर्शयेहमात्मनः स्वविभवेन।
 यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्वखलेयं छलं न गृहीतव्यम्।।
 हिन्दी पद्य- दर्शाऊँ एक विभक्त को, आत्मातने निज विभव से।
 दर्शाऊँ तो करना प्रमाण, न छल गहो स्वखलना बने।।

अन्वयार्थ-(तं) उस (एकत्वविभक्तं) एकत्व विभक्त आत्मा को (अहं) मैं (आत्मनः) आत्मा के (स्वविभवेन) निज वैभव से (दर्शये) दिखाता हूँ; (यदि) यदि मैं (दर्शयेयं) दिखाऊँ तो (प्रमाणं) प्रमाण (स्वीकार) करना, (स्खलेयं) और यदि कहीं चूक जाऊँ तो (छलं) छल (न) नहीं (गृहीतव्यं) ग्रहण करना।

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति, समाहितान्तः करणेन सम्यक्।

समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां, विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये।। (3) समाधितंत्र

परमात्मा को नमस्कार करके अनन्तर मैं पूज्यपाद आचार्य कर्ममल रहित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को शास्त्र के द्वारा, अनुमान व हेतु के द्वारा एकाग्र मन के द्वारा अच्छी तरह अनुभव करके कैवल्य पद-विषयक अथवा निर्मल अतीन्द्रिय सुख की इच्छा रखने वालों के लिए अपनी शक्ति के अनुसार कहूँगा।

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।

चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।। (1) समयसार

प्रगटै निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप।

सब ज्ञाता लखिके नमौ, समयसार सब भूप।।

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।

तं सुदकेवलमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।। (9)

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलं तमाहु जिणा।

णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवलि तम्हा।। (10) समयसार

जो जीव निश्चय से श्रुतज्ञान के द्वारा इस अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्मा को सम्मुख होकर जानता है, उसे लोक को प्रगट जानने वाले ऋषीश्वर श्रुतकेवली कहते हैं; जो जीव सर्व श्रुतज्ञान को जानता है, उसे जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं, क्योंकि ज्ञान सब आत्मा ही है, इसलिये (वह जीव) श्रुतकेवली है।

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं,

क्वचिदपि च न विद्भो याति निक्षेपचक्रम्।

किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वकषेऽस्मि-

त्रनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव।। (9) अमृतकलश

आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं कि इन समस्त भेदों को गौण करने वाला जो शुद्धनय का विषयभूत चैतन्य-चमत्कार मात्र तेजः पुञ्ज आत्मा है, उसका अनुभव होने पर नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती, प्रमाण अस्त हो जाता है

और निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है, सो हम नहीं जानते। इससे अधिक क्या कहें? द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता।

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या

ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्धवा।

आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प-

मेकोऽस्ति नित्यमवबोधधनः समन्तात्॥ (13) अमृतकलश

इस प्रकार जो पूर्व कथित शुद्धनय स्वरूप आत्मा की अनुभूति है, वही यथार्थ में ज्ञान की अनुभूति है, यह जानकर तथा आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके “सदा सर्व ओर एक ज्ञानधन आत्मा है”, इस प्रकार देखना चाहिये।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं अणणमविसेसं।

अपदेस संतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥ (15) समयसार

जो पुरुष आत्मा को अबद्ध स्पृष्ट, अनन्य, अविशेष (तथा उपलक्षण से नियत व असंयुक्त) देखता है वह सर्व जिनशासन को देखता है-जो जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत तथा अभ्यन्तर ज्ञानरूप भावश्रुत वाला है।

वैश्विक अन्तर्सम्बद्ध (6 द्रव्य, 7 तत्त्व) परक शोधपूर्ण कविता

स्व-अस्तित्व से सिद्ध होता है विश्व का अस्तित्व

(आत्मज्ञान हेतु चाहिए विश्व ज्ञान!)

(स्व-ज्ञान हेतु अन्य द्रव्य-तत्त्व का ज्ञान चाहिए!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत....., छोटी-छोटी गैया.....)

स्व-ज्ञान हेतु (मुझे) अन्य ज्ञान चाहिए...सभी द्रव्य-तत्त्वों का ज्ञान चाहिए...

अन्यथा मुझे न होगा मेरा ज्ञान...निश्चय-व्यवहार से न होगा ज्ञान...(ध्रुव)...

‘मैं’ हूँ सच्चिदानंद (मय) जीव द्रव्य...स्वयंभू स्वयंपूर्ण अमूर्त द्रव्य...

अनादि अनिधन शाश्वत द्रव्य...अनंतज्ञान दर्शन सुखमय...

किन्तु अभी हूँ ‘मैं’ सशरीरी मूर्तिक...जन्म-मरण सह अशुद्धमय...

कारण है इसका भौतिक कर्म पुद्गल...मेरे राग द्वेष मोह (भी) बने कारक...(1)...

कहाँ है कर्म व कैसे आये कर्म...कैसे मुझमें बन्धे ये कर्म...

कैसे होऊँगा ‘मैं’ कर्म से मुक्त...इसी हेतु चाहिए मुझे बोध...

आकाश में रहते हैं कर्म पुद्गल...कर्म आने का कारण आत्मकम्पन...
 कर्म आगमन के निमित्त धर्म द्रव्य...कर्मबंध में हेतु (मेरा) विभाव भाव...(2)...
 इसी से संसार में (मेरा) होता भ्रमण...शरीर सह होने से जन्म-मरण...
 भ्रमण (गति) हेतु निमित्त धर्म द्रव्य...परिणमन में निमित्त काल द्रव्य...
 जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल...होते हैं शाश्वत द्रव्य मौलिक (द्रव्य)
 सभी द्रव्य रहते हैं लोक-आकाश में...गमनागमन करते जीव-पुद्गल लोक में...(3)...
 सभी द्रव्यों में परिणमन होता सतत...परिणमन में काल द्रव्य निमित्त...
 गति-स्थिति हेतु धर्माधर्म निमित्त...हर द्रव्य स्वयं ही है मुख्य निमित्त...
 कर्मक्षय हेतु संवर-निर्जरा चाहिए...अथ सदृष्टि ज्ञान वृत्त चाहिए...
 इसी हेतु उक्त सभी ज्ञान चाहिए...आत्मविश्वास आत्मशुद्धि चाहिए...(4)...
 आत्मविशुद्धि हेतु विभाव क्षय चाहिए...राग-द्वेष-मोहादि का क्षय चाहिए...
 कर्मक्षय से 'मैं' बनेगा सच्चिदानंद... 'कनक' बनेगा शुद्ध-बुद्ध-आनंद...(5)...
 नन्दौड़, दिनांक 10.11.2015, रात्रि 8.20 (स्वरूप चतुर्दशी)

सन्दर्भ-

एकोभावः सर्वभाव स्वभावः सर्वभावा एक भाव स्वभावाः।

एकोभावस्तत्त्वतो येन बुद्धः सर्व भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः॥ प्र.सा.

भाव यह है कि एक भाव सर्वभावों का स्वभाव है और सर्वभाव एक भाव के स्वभाव हैं। जिसने निश्चय से यथार्थ रूप से एक भाव को जाना उसने यथार्थ रूप से सर्वभावों को जाना है। यहाँ ज्ञाता व ज्ञेय सम्बन्ध लेना चाहिए, जिसने ज्ञाता को जाना उसने सब ज्ञेयों को जाना ही है।

तद्व्यालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं।

वद्वन्ते ते गाणे विसेसदो दव्वजादीणं॥ (37) प्र.सार

उन प्रसिद्ध शुद्ध जीव द्रव्यों की व अन्य द्रव्यों की वे पूर्वोक्त सर्व सद्भूत और असद्भूत अर्थात् वर्तमान, भूत तथा भविष्य काल की पर्यायें निश्चय से या स्पष्ट रूप से केवलज्ञान में विशेष करके अर्थात् अपने-अपने प्रदेश, काल, आकार भेदों के साथ संकर, व्यतिकर दोष के बिना वर्तमान पर्यायों के समान वर्तती है अर्थात् प्रतिभासती है या स्फुरायमान होती हैं।

(यह कविता कवि (आ. कनकनन्दी) के वैज्ञानिक शिष्यों के कारण व उनके लिए बनी।)

आध्यात्मिक में/(से) ही परम विकास

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : छोटी-छोटी गैया.....)

आध्यात्मिक में/(से) ही है परम विकास, अन्य किसी से भी न होना संभव।
व्यापार-राजनीति-विज्ञान-उद्योग, लौकिक कार्यादि से न होना संभव॥ (1)

आत्मा में ही है अनंत शक्ति अतः, आध्यात्मिक से ही परम होता विकास।
अन्य व्यापारादि में नहीं अनंत शक्ति, अतः परम न होता विकास॥ (2)

दास से लेकर मालिक तक, प्रजा से लेकर चक्रवर्ती तक।
छात्र से लेकर वैज्ञानिक तक, सभी की सीमा है संसार तक॥ (3)

सांसारिक विकास तो भौतिकमय, तथाहि सीमित व नाशवान्।
सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि तक, भोगोपयोग व दुःख सम्पन्न॥ (4)

संसार में सभी के विकास विषम, जिससे होता है ईर्ष्या व द्वेष।
शोषण-शोषित मालिक-मजदूर, छोटा-बड़ा व भक्ष-भक्षक॥ (5)

सांसारिक हर विकास में होता, अवश्य न्यूनता व दोष।
तन-मन-इन्द्रिय या आत्मा संबंधी होती है न्यूनता व दोष॥ (6)

जिससे होता है अवश्य दुःख, रोग चिन्ता अपमान मरण।
भोजन पानी निवास सुरक्षा, आकर्षण-विकर्षण आदि के कारण॥ (7)

आध्यात्मिक तो इसी से परे, आत्मा में ही है सब कुछ स्थित।
तन-मन-इन्द्रिय व सत्ता-संपत्ति, रहित सच्चिदानंदमय रूप॥ (8)

यह ही है परम विकास, जिसे कहते हैं परिनिर्वाण।
अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य, स्वरूप यही है परम विकास॥ (9)

इसी हेतु ही चक्रवर्ती भी, त्याग करते हैं राज वैभव।
इसी अवस्था को प्राप्त न कराते, स्वर्ग के भी इन्द्र तक॥ (10)

इस परम अवस्था हेतु अहमिन्द्र भी, रहते हैं सदा इच्छुक।
इस परम अवस्था हेतु ध्यान-अध्याय में रत 'कनक'॥ (11)

नन्दौड़, दिनांक 12.11.2015, रात्रि 10.45

(भारत आदि पृथ्वी के प्रायः आधे देशों को गुलाम बनाकर शासन करने वाले

ब्रिटेन के पार्लियामेंट में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के भाषण से प्रेरित होकर यह कविता बनी, भारत के प्रधानमंत्री के रूप में यह पहला भाषण है इसके पहले भारत के कोई प्रधानमंत्री ने वहाँ भाषण नहीं किया।)

वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत्त होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जानता है परन्तु जब वही कर्मरज रूपी आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख, पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है। केवली (अरहंत सिद्ध भगवान्) के सुख का वर्णन पूज्यपाद स्वामी ने सिद्ध भक्ति में निम्न प्रकार किया है-

आत्मोपादानसिद्धं, स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं,
वृद्धिहासव्यपेतं, विषयविरहितं, निःप्रतिद्वन्द्वभावम्।
अन्यद्रव्यानपेक्षं, निरूपमममितं, शाश्वतं सर्वकालं,
उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्यजातम्॥ (7)

सिद्ध का सुख (1) आत्मा से ही उत्पन्न होता है। (2) वह सुख स्वयं अतिशय युक्त होता है। (3) समस्त बाधाओं से रहित होता है। (4) अत्यंत विशाल व विस्तीर्ण होता है। (5) वृद्धि एवं हास से रहित। (6) इन्द्रिय विषयों से रहित स्वाभाविक होता है। (7) दुःख रूप विरोधी धर्म से सदा रहित है। (8) अन्य बाह्य निमित्त या समाग्रियों की अपेक्षा से रहित है। (9) उपमा रहित है। (10) अनंत है। (11) विनाश रहित है इसलिये सदा बना रहता है। (12) उस सुख का माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट है और वह अनंतकाल तक रहता है। (13) इन्द्रादिक के सुख से भी बढ़कर है इसलिए कर्मों के सर्वथा नाश होने से वह सिद्ध भगवान् के ही होता है।

नार्थः क्षुत्तृट्विनाशाद् विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या।
नास्पृष्टैर्गन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनैर्, ग्लानिनिद्राद्यभावात्॥
आतंकार्तेरभावे, तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्।
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे, दूश्यमाने समस्ते॥ (8)

सिद्ध भगवान् के क्षुधा और तृष्णा के नाश हो जाने से अनेक प्रकार के रसयुक्त अन्न तथा पान से कोई प्रयोजन नहीं है। अशुचि अर्थात् अपवित्र पदार्थों के स्पर्श नहीं होने से सुगन्धित पदार्थों से प्रयोजन नहीं है। ग्लानि और निद्रादि के नहीं होने से कोमल शय्या से भी प्रयोजन नहीं, रोग की पीड़ा के अभाव होने के कारण उस रोग

को दूर करने के साधन रूप औषधि भी व्यर्थ है, जैसे कि समस्त दिखाई देने वाले अंधकार के चले जाने पर दीप की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥ (27 गीता पृ. 76)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पाप-रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्मप्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

स्वसंवेदनं सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।

अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः॥ (21 इष्टोपदेश पृ. 185)

यह आत्मा आत्म-अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रगट होता है यानि-जाना जाता है, वह शरीर के बराबर है, अविनाशी है-कभी इसका नाश नहीं होता। अनंतसुख वाला है ऊर्ध्व, मध्य, पाताल का यानि-समस्त जगत् का तथा जगत् के बाहर अनंत अलोकाकाश जानने-देखने वाला है।

सामग्रीविशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्। (11)

(प्रमेयरत्नमाला पृ. 83)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके, ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।

आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवंस्तथैवा॥

पृ.102

तथा संन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार है- हे भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है, तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यन्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। (पतञ्जली योगदर्शन 24 पृ.174)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से, शुभाशुभकृतियों से जन्य पुण्य-पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्ट, जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सीमातीत मेरा आत्म धर्म

महान्तम पावन मेरा आत्म/(जैन) धर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

कितना उदार कितना पावन है आत्म/(जैन) धर्म मेरा।

राग-द्वेष-मोह व ईर्ष्या-तृष्णा रहित चिन्मय वाला।। (1)

सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि रहित, चैतन्य वैभव वाला।

इन्द्रिय-भोग-उपभोग-रहित, अनन्त आत्मानन्द वाला।। (2)

तन-मन-इन्द्रिय से परे मेरा, धर्म सच्चिदानन्द वाला।

जन्म-मरण व रोग रहित, शुद्ध-बुद्ध व ध्रुव वाला।। (3)

शत्रु-मित्र भाई-बंधु रहित, वैश्विक मैत्री वाला।

भेद-भाव व घृणा रहित, वीतराग, साम्य सुख वाला।। (4)

छिद्रान्वेषी निन्दा अपमान, रहित गुणानुराग वाला।

विधर्मी-दोषी-पापी जीवों से भी, साम्यभाव रखने वाला।। (5)

दुःखी-रोगी-विपन्न जीवों से, करुणा रखने वाला।

धनी-मानी व प्रसिद्धि वालों से, अप्रभावित रहने वाला।। (6)

अहंकार-ममकार से रहित, किन्तु 'सोऽहं' व 'अहं' वाला।

संकल्प-विकल्प-संक्लेश रहित, निर्विकल्प शान्तरस वाला।। (7)

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतिक्षा रहित, स्वावलंबी-स्वानुशासी वाला।

संकीर्णता व बंधन रहित, अनंत-स्वाधीनता वाला।। (8)

दिखावा प्रपंच व ढोंग रहित, आत्मिक दर्शन वाला।

परोपदेशी पाण्डित्य रहित, आध्यात्मिक ज्ञान वाला।। (9)

गोमुख व्याघ्र सम आचार रिक्त, आत्मानुभव वाला।

भोग-आकांक्षा व निदान रहित, आत्मोपलब्धि वाला।। (10)

भौतिक-नैतिक रूढि परम्परा परे, आत्मविशुद्धि है मेरा धर्म।

क्षेत्र-काल-मन-बुद्धि से भी परे, आत्म स्वभाव है मेरा धर्म॥ (11)

अद्वितीय है अनुपम है, अतुलनीय आत्म धर्म मेरा।

स्वयं में पूर्ण स्वयं में लीन, 'कनक' का शुद्धात्म धर्म न्यारा॥ (12)

नन्दौड़, दिनांक 09.11.2015, मध्याह्न 12.37 व 2.45

कर्ता व भोक्ता स्वयं जीव

(अच्छे-बुरे या धर्म सब कुछ जीव स्वयं के लिए करते)

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : छोटी-छोटी गैया.....)

जो कुछ भी जीव करते हैं व सोचते स्वयं के लिए ही वे करते हैं।

अच्छे बुरे या धार्मिक सभी के, फल स्वयं को ही तो मिलते हैं॥ (1)

मन-वचन-काय कृत कारित से, करते भी जीव जो अनुमत से।

पुण्य-पाप या धर्म-अधर्म सभी, करते हैं जीव स्वयं के ही लिए॥ (2)

क्रोध-मान-माया-लोभ-काम-मोह, हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह।

दान-दया-सेवा-त्याग-परोपकार, ध्यान-अध्ययन-तप स्वयं के लिए॥ (3)

ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-परनिंदा-अपमान, मिलावट-शोषण आदि कुकाम।

समता-शांति व क्षमा-सहिष्णुता, स्वयं के फल को जीव स्वयं ही पाते॥ (4)

सुकृत-दुष्कृत व आध्यात्मिक के फल, पाते हैं जीव स्व-भाव-व्यवहार से।

बीजानुसार ही यथा फल-फूल आते, भोजन अनुसार यथा परिणाम पाते॥ (5)

नवकोटि से जीव जो कर्म बांधते, तदनुकूल जीव फल को पाते।

पुण्य से अभ्युदय तो पाप से पतन, इह-परलोक में फल ये पाते॥ (6)

ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग से, समता-शांति व सहिष्णुता से।

आत्मविशुद्धि से पुण्य-पाप नष्ट कर, शुद्ध-बुद्ध व ज्ञानानंद को पाते॥ (7)

अतः हर जीव स्वयं के सुख हेतु, पाप त्यागकर करना चाहिए पुण्य।

शाश्वतिक सुख हेतु कर्म नाशकर, बनना श्रेय है सच्चिदानंदमय॥ (8)

कर्म सिद्धांत का रहस्य भी यह है, मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक रहस्य।

इह-परलोक आध्यात्मिक सुख के उपाय, आध्यात्मिक सुख ही 'कनक' का अंतिम

लक्ष्य॥ (9)

नन्दौड़, दिनांक 07.11.2015, रात्रि 7.45

संदर्भ-

एवं कत्ता भोक्ता होजं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।

हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो।। (69)

इस प्रकार अपने कर्मों का कर्ता-भोक्ता होता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है-

विश्व प्रधान कर्म परि राखा।

जो जस करहिं फलहि तस चाखा।।

अमितगति आचार्य ने कहा भी है-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृत कर्म निरर्थकं तदा।। (30)

पहले जो जीव पुण्य एवं पाप कर्म करता है उसका ही फल शुभ एवं अशुभ रूप से प्राप्त करता है। यदि कोई दूसरे के द्वारा दिये गये शुभ या अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो स्वयं किया हुआ कर्म निरर्थक हो जायेगा।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददापि किंचन।

विचार यन्नेवमनन्य मानसः, परो ददतीति विमुञ्च शेमुषीम्।। (31)

सामायिक पाठ

अपने उपार्जित कर्म छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्! तू एकाग्रचित्त हो और दूसरा देता है इस बुद्धि को छोड़।

करुणा! तेरी अमृतधारा

(अहिंसा (करुणा) का विश्व रूप)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत.....)

करुणा! तेरी अमृतधारा...झर-झर बहती जाये।

विश्वभर के हर जीव मात्र...तुझे से प्लावित हो जाये।। (स्थायी)

तुम तो उदार पावनमय, वैश्विक तेरा प्रभाव।

सूक्ष्म जीव से सिद्ध जीव तक, तेरा होता है निवास।

अपना-पराया भेद-भाव रिक्त, तू बरसाये आशीष।।...करूणा...(1)

हर जीव में मैत्री भाव रूप में, गुणी जीव में प्रमोद।

दुःखी जीव प्रति कृपा भाव में, विपरीत में माध्यस्थ।

दया दान सेवा परोपकार रूप में, तेरा (ही) सर्वत्र निवास।।...करूणा...(2)

वात्सल्यमय भी तेरा ही रूप, समता शांति उदारता।

क्षमा मार्दव आर्जव शौचमय, सत्य संयम अपरिग्रह।

तप त्याग व ब्रह्मचर्यमय, आकिंचन्य तेरा ही रूप।।...करूणा...(3)

आत्मविशुद्धि ही तेरा स्वरूप, पर्यावरण रक्षा (भी) तेरा रूप।

विश्व शांति व विश्व मैत्री भी, तेरा ही है विभिन्न रूप।

चोरी मिलावट शोषण रहित, भ्रष्टाचार आतंक (वाद) रिक्त।।...करूणा...(4)

ईर्ष्या द्वेष घृणा रहित रूप, निन्दा अपमान रिक्त रूप।

संकीर्ण पंथ-मत परे स्वरूप, जाति भाषा राष्ट्र उपरत।

आकाश सम सीमा रहित, सर्व व्यापक विश्व रूप।।...करूणा...(5)

तेरे लिए ही है धर्म आचरण, पूजा आराधना व प्रार्थना।

ध्यान अध्ययन व आत्म विश्लेषण, तेरे लिए ही तप साधना।

तेरा ही है परम उत्कृष्ट रूप, शुद्ध बुद्धमय परम आत्मा।।...करूणा...(6)

तेरे बिना न कोई धर्म होता, कानून राजनीति संविधान।

व्यक्ति-समाज व्यवस्था से लेकर, वैश्विक व्यवस्था भी तक।

तू ही जीव का मूल स्वभाव, 'कनक' का शुद्धात्म भाव।।...करूणा...(7)

नन्दौड़, दिनांक 24.11.2015, प्रातः 6.37

(यह कविता प्रवचनसार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय आदि से प्रभावित।)

हिंसा का विश्वस्वरूप

आत्म-परिणाम-हिंसन हेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।

अनृत-वचनादि-केवलमुदाहृतं शिष्य-बोधाया।।42।।

जिससे आत्म परिणाम का हिंसन/हनन होता है वह सब हिंसा ही है। असत्य आदि पापों का कथन प्राथमिक कम बुद्धि वाले शिष्यों को समझाने के लिए उदाहरण के रूप में बताया गया है। प्रमाद से युक्त कषाय से संयुक्त जीव के परिणाम ही हिंसा के लिए कारण होता है। असत्य आदि पाप हिंसा की ही अवस्थान्तर है। तथापि शिष्यों

को समझाने के लिए असत्य आदि पापों का भी कथन किया जाता है। पन्द्रह प्रकार के प्रमादों से आत्मा के परिणाम कलुषित होते हैं, मलिन होते हैं इसलिये वह प्रमाद ही हिंसा है।

हिंसा का विश्व लक्षण

यत्खलुकषाय-योगात् प्राणानां द्रव्य भावरूपाणां।

व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा॥४३॥

अघ्नन्नापि भवेत्पापीः निघ्नन्नापि न पापभाक्।

परिणाम-विशेषेण यथा धीवर-कर्षकौ॥१॥

स्वयमेवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं हिनस्त्यात्माप्रमादतः।

पूर्वं प्राण्यंतराणां च पश्चात्स्याच्च न वा वधः॥२॥

निश्चय से कषाय के योग से द्रव्य भाव रूप प्राणों का हनन होना हिंसा है। निश्चय से कषाय के योग से अर्थात् क्रोध, मान आदि चार कषाय हास्यादि नो कषाय के योग से इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास शरीर आदि द्रव्य प्राण तथा ज्ञान आदि भाव प्राणों का हनन करना या उन्हें पीड़ा देना हिंसा है। इन द्रव्य एवं भाव प्राणों का प्रमत्त योग से व्यपरोपण करना, विनाश करना, वियोजन करना निश्चय से हिंसा है। गोम्मट्टसार में कहा भी है-

पाँच इन्द्रिय प्राण, मन, वचन, काय, रूप तीन बल प्राण श्वासोच्छ्वास एवं आयु मिलाकर के दस प्राण होते हैं। इस गाथा कथित यथायोग्य दसों प्राण का वियोग करना या उन्हें क्षति पहुँचाना हिंसा है। यहाँ पर परिणाम को प्राधान्यता दी गई है। धर्म संग्रह में भी कहा गया है-

जिससे कोई जीव का घात नहीं हुआ वह भी पापी हो सकता है तथा जिससे जीव का घात हुआ है वह भी पाप से रहित हो सकता है। जिस प्रकार धीवर ने जाल बिछाया परन्तु एक भी मछली नहीं पकड़ पाया तो भी वह हिंसक ही है और खेत में काम करते हुए किसानों से अनेक क्षुद्र जीव मर जाते हैं तो भी वह अहिंसक है। क्योंकि धीवर का परिणाम मछली पकड़ने का है और किसान का परिणाम अन्न उत्पादन करने का है। दोनों के परिणाम भिन्न-भिन्न होने के कारण उसके फल भी भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रमाद के कारण स्वयंमेव ही स्वयं की आत्महत्या पहले कर लेता है। पश्चात् दूसरों की हिंसा करे या ना करे। प्राणियों की हिंसा अधर्म का कारण है ऐसा जानना चाहिए।

अहिंसा और हिंसा का भावात्मक लक्षण

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।

तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥४४॥

राग-द्वेष आदि दूषित परिणाम का आत्मा में उत्पन्न नहीं होना निश्चय से अहिंसा है। इसी ही राग-द्वेष आदि दूषित परिणामों का उत्पन्न होना जिनागम में संक्षिप्त से हिंसा कहा है। जिनागम का संक्षेप या सार यह है कि अप्रयत्न रूप से आचरण करना हिंसा है एवं प्रयत्नपूर्वक आचरण करना अहिंसा है।

प्राणघात से भी यत्नाचारी हिंसक नहीं

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तेरणापि।

न हि भवतिजातु हिंसा, प्राणव्यपरोपणादेव॥४५॥

जो प्रयत्न आचरण से युक्त है तथा रागादि आवेश से रहित है उससे हिंसा नहीं होती है। युक्त आचरण से सहित मुनीश्वरों के रागादि भावों के आवेश के बिना कदाचित् प्राण व्यपरोपण होने पर भी हिंसा नहीं होती है।

अयत्नाचारी प्राणघात के बिना भी हिंसक

व्युत्थानावस्थायां, रागादीनां वश प्रवृत्तानाम्।

म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा॥४६॥

राग आदि परिणाम से वशीभूत जीव प्रमाद अवस्था में रहते हुए दूसरे जीव मरे या नहीं मरे अवश्य हिंसक होता है। आचार्यश्री ने इस प्रकरण में कहा कि राग आदि परिणाम से वशीभूत जीवों के तथा प्रमाद से सहित जीवों के आगे-आगे हिंसा दौड़ती रहती है। इसका रहस्य यह है कि वह अवश्यमेव हिंसक होता है अर्थात् त्रस-स्थावर जीवों के प्राणों का हनन करने वाले या नहीं करने वाले भी प्रमादी जीव अवश्य ही हिंसक होते हैं।

समीक्षा-आचार्य कुंदकुंद देव ने भी प्रवचनसार (सत्यसाम्यसुखामृतम्) में कहा भी है-

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।

पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स॥२१७॥

(जीवो मरदु व जियदु) जीव मरे या जीता रहे (अयदाचारस्स) जो यत्नपूर्वक आचरण से रहित है उसके (णिच्छिदा हिंसा) निश्चय हिंसा है (समिदस्स) समितियों में (पयदस्स) जो प्रयत्नवान् है उसके (हिंसामेत्तेण) द्रव्य प्राणों की हिंसा मात्र से

(बंधो णत्थि) बंध नहीं होता है।

बाह्य में दूसरे जीव का मरण हो या मरण न हो जब कोई निर्विकार स्वसंवेदन रूप प्रयत्न से रहित है तब उसके निश्चय शुद्धचैतन्य प्राण का घात होने से निश्चय हिंसा होती है। जो कोई भली प्रकार अपने शुद्धात्म स्वभाव में लीन है, अर्थात् निश्चय समिति को पाल रहा है तथा व्यवहार में ईर्ष्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापना इन पाँच समितियों में सावधान है, अंतरंग-बहिरंग प्रयत्नवान् है, प्रमादी नहीं है उसको बंध नहीं होता है। यहाँ यह भाव है कि अपने आत्म स्वभाव रूप निश्चय प्राण का विनाश करने वाली रागादि परिणति निश्चय हिंसा कही जाती है। रागादिक उत्पन्न करने के लिए बाहरी निमित्त रूप जो परजीव का घात है सो व्यवहार हिंसा है, ऐसे दो प्रकार हिंसा जाननी चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि बाहरी हिंसा हो या न हो जब आत्म स्वभाव रूप निश्चय प्राण का घात होगा तब निश्चय हिंसा ही मुख्य है।

उच्चलियमिह पाए इरियासमिदस्स णिगमत्थाए।

आबाधेज्ज कुलिंगं अरिज्जं तं जोगमोसेज्ज।। (217/1)

ण हि तस्स तण्णिमित्ते बंधो सुहुमो य देसिदो समये।

मुच्छापरिग्गहोच्चिय अज्झप्पमाणदो दिट्ठे।। (217) प्रवचनसार

आगे इसी ही अर्थ को दृष्टांत से दृढ़ करते हैं-

(इरियासमिदस्स) ईर्या समिति से चलने वाले मुनि के (णिगमत्थाए) किसी स्थान से जाते हुए (उच्चलियमिह पाए) अपने पग को उठाते हुए (तं जोगमोसेज्ज) उस पग के संघट्टन के निमित्त से (कुलिंगं) कोई छोटा जन्तु (आबाधेज्ज) बाधा को पावे (मरिज्ज) या मर जावे (तस्स) उस साधु के (तण्णिमित्तो सुहुमो य बंधो) इस क्रिया के निमित्त से जरा-सा भी कर्म का बंध (समये) आगम में (णहि देसिदो) नहीं कहा गया है। जैसे (मुच्छापरिग्गहोच्चिय) मूर्छा को परिग्रह कहते हैं सो (अज्झप्पमाणदो दिट्ठे) अंतरंग भाव के अनुसार मूर्च्छा देखी गई हैं।

आचार्यश्री ने इस गाथा में हिंसा एवं अहिंसा की यथार्थ सूक्ष्म व्यापक आगमोक्त परिभाषा दी है। धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य निश्चय से स्वयं के ऊपर अवलंबित है दूसरों पर अवलंबित नहीं है भले निमित्त और भी कुछ हो सकता है। स्वशुद्ध आत्मस्वरूप से विचलित होना च्युत होना ही हिंसा है। आत्मस्वरूप से च्युत होना ही अयत्नाचार है, प्रमाद है। इसलिये कहा गया है कि “प्रमत्तयोगात्-प्राणव्यपरोपणं हिंसा” प्रमाद के योग से भाव प्राण एवं द्रव्य प्राणों को क्षति पहुँचाना, नष्ट करना हिंसा है। प्रमाद योग से रहित वस्तुतः हिंसा होती नहीं भले द्रव्य हिंसा हो, क्योंकि आस्रव, बंध, संवर,

निर्जरा, मोक्ष भाव के ऊपर ही अवलंबित है, भले इसके लिए बाह्य निमित्त और कुछ भी हो। कुंदकुंद देव ने समयसार में कहा भी है-

अञ्जवसिदेण बंधो सत्ते मारेहिं मा व मारे हि।

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स।। (274) पृ.250 प्र.सार

निश्चयनय का कहना है कि जीवों को मारो या न मारो, किन्तु जीवों के मारने रूप भाव से कर्मों का बंध तो होता है। यही बंधत्व का संक्षेप है।

निश्चयनय से प्रत्येक जीव अजर, अमर, शाश्वतिक है। इसलिये कोई किसी को नहीं मार सकता है। अशुद्ध निश्चयनय से स्वयं की हिंसा स्वयं ही कर सकता है क्योंकि अशुद्ध निश्चयनय से जो राग, द्वेष, मोह परिणाम होते हैं उनसे स्वस्वरूप की हिंसा हो जाती है। इसलिये अशुद्ध निश्चयनय से स्वयं की हिंसा स्वयं करता है और इस भाव से दूसरों के द्रव्यप्राण एवं भावप्राण को क्षति पहुँचाता है अतः उसे हिंसा कहते हैं। इसलिये वस्तुतः स्वअध्यवसाय, स्वप्रमाद या स्वअयत्नाचार ही हिंसा है।

उपर्युक्त समस्त सिद्धांतों से यह सिद्ध होता है कि भाव निर्मलता/पवित्रता ही वस्तुतः अहिंसा है और भावों की मलिनता, अपवित्रता ही हिंसा है। जिनकी भावों में निर्मलता होगी अर्थात् भाव अहिंसा होगी वे द्रव्य हिंसा भी नहीं कर सकते हैं। कथंचित् उनसे द्रव्य हिंसा हो जाती है परन्तु जो भाव हिंसक हैं उनसे द्रव्य हिंसा हो या नहीं हो वे निश्चय ही हिंसक हैं। जिस प्रकार आत्मा को पवित्र करने के लिए जो उपवास करते हैं उस उपवास के कारण उदर व शरीरस्थ अनेक जीव मरते हैं। छद्मस्थ के शरीर में अनंत बादर निगोदिया जीव व अनेक त्रस जीव भी रहते हैं परन्तु वही जीव जब केवली बन जाता है तो उनके शरीरस्थ अनंत जीव ध्यानरूपी अग्नि से कुछ निकल भी जाते हैं कुछ मर भी सकते हैं तथापि आत्मकल्याण के लिए उपवास करने वालों को एवं शुक्लध्यान करने वालों को जीव हिंसा जनित दोष नहीं लगता है न पाप बंध ही होता है परन्तु जो स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य रहता है उसके कान में रहने वाला तन्दुल मत्स्य नरक जाता है। भले वह जीवन में एक जीव को भी नहीं मारता है न मांस खाता है केवल महामत्स्य के कान के मैल को खाता है। इससे सिद्ध होता है कि भावों की पवित्रता ही यथार्थ से अहिंसा है परन्तु वर्तमान में देखने में आता है कि कुछ व्यक्ति जो अहिंसा का उपदेश करते हैं दूसरों को अहिंसा का पाठ पढ़ाते हैं वे ही अधिक कुटिल, मायाचारी, दूसरों को ठगने वाले, धूर्त, अच्छी चीज में नकली मिलावट करने वाले, अधिक ब्याज लेकर दूसरों का शोषण करने वाले, घी में डालडा तथा चर्बी मिलाने वाले, शराब एवं चर्म का व्यापार करने वाले,

मुर्गी पालन करने वाले, हिंसात्मक सौंदर्य प्रसाधन सामग्री का व्यापार व प्रयोग करने वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति जीवन में एक भी द्रव्य हिंसा न करे व एक भी माँस का टुकड़ा न खाये तो भी हिंसक हैं, पापी हैं, क्योंकि जब भावों में अहिंसा होगी तो ऐसी विचित्र हिंसा इनसे हो ही नहीं सकती है। इसका मतलब यह नहीं द्रव्य हिंसा करे या द्रव्य हिंसा की छूट है। परन्तु भाव अहिंसा के लिए भावों की निर्मलता के लिए द्रव्य हिंसा भी सर्वथा वर्जनीय है क्योंकि जो जानबूझकर द्रव्य हिंसा करेगा वह अवश्य ही भाव हिंसक ही होगा। इसलिये भावों की निर्मलता के लिए भाव हिंसा एवं द्रव्य हिंसा दोनों त्यजनीय है। करूणा के अवतार महात्मा बुद्ध ने अप्रमाद को अमृत कहा है एवं प्रमाद को मृत्यु कहा। उन्हीं का यह कथन यथार्थ है। क्योंकि अप्रमाद से हिंसा नहीं होती है और यह अहिंसा ही अमृत (अ+मृत=न मरना, अमर, विकार न होना, क्षति न होना) है तथा प्रमाद ही मृत्यु (विनाश, घात, क्षति, दुःख, मरण) है। अतएव अप्रमादी अमृतपद (मोक्ष, शाश्वतिक, निर्वाण) को प्राप्त करता है और प्रमादी मृत्युपद (मरण, दुःख, संसार) को प्राप्त करता है। धम्मपद में उन्हीं का अमर संदेश निम्न प्रकार से लिपिबद्ध है-

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं।

अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता।।

प्रमाद न करना अमृत पद का साधक है और प्रमाद करना मृत्युपद का साधक। अप्रमादी नहीं मरते, किन्तु प्रमादी तो मरे तुल्य ही हैं।

उट्टानेनप्पमादेन सञ्जमेन दमेन च।

दीपं कघिराथ मेधावी यं ओघो नाधिकीरति।।5।।

मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम (इन्द्रिय दमन) द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बनावे, जिसे बाढ़ नहीं डुबा सके।

पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना।

अप्पमादञ्च मेधावी धनं सेट्टं व रक्खति।।6।।

मूर्ख, अनाड़ी लोग प्रमाद में लगते हैं, बुद्धिमान श्रेष्ठ धन की भाँति अप्रमाद की रक्षा करता है।

मा पमादमनुयुञ्जेय मा कामरतिसन्धवं।

अप्पमत्तो हि ज्ञायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं।।7।।

मत प्रमाद में फँसो, मत काम-रति में लिप्त हो। प्रमाद रहित पुरुष ध्यान करते हुए महान् सुख को प्राप्त होता है।

पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो।

पञ्जापासादमारुह असोको सोकिनिं पजं॥18॥

जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है तब वह शोक रहित हो, शोकाकुल प्रजा को, प्रजारूपी प्रासाद पर चढ़कर जैसे पर्वत पर खड़ा पुरुष भूमि पर स्थित वस्तु को देखता है, वैसे ही वीर पुरुष अज्ञानियों को देखता है।

अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।

अबलस्सं व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो॥17॥

प्रमादी लोगों में अप्रमादी तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लोगों में (प्रज्ञा से) जागरणशील बुद्धिमान उसी प्रकार आगे निकल जाता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है।

आत्मघाती दूसरों के प्राणघात के बिना भी हिंसक

यस्मात्सकषायः सन् हन्त्यात्मा-प्रथममात्मनाऽऽत्मानम्।

पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राव्यंतराणां तु॥47॥

कषाय से युक्त जीव सर्वप्रथम स्व-आत्म स्वरूप की हिंसा करता है। पश्चात् अन्य जीवों की हिंसा हो या नहीं हो। सकषाय जीव कषाय के वशीभूत होकर बहिरात्मा होकर अंतरात्मा का हनन करता है। आत्मवध होने के पश्चात् अन्य जीवों का वध हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है।

प्रमादयोग में नियम से हिंसा होती

हिंसायामविरमणं हिंसापरिणमनमपि भवति हिंसा।

तस्मात् प्रमत्तयोगे प्राण-व्यपरोपणं नित्यम्॥48॥

विकहा तहा कसाया, इंदियणिद्वा तहेव पणयो य।

चदु चदु पणमेगेगं होति पमादा हु पण्ण रसा॥

अथ प्रमादावस्थायां एव हिंसा प्रवर्तनं इत्यर्थः।

हिंसा से प्रतिज्ञापूर्वक विरक्त नहीं होना भी हिंसा ही है। जीव वध से अविरमण हिंसा होती है। हिंसा का परिणाम भी हिंसा ही है। मानसिक हिंसात्मक परिणाम ही हिंसा है। इसलिए प्रमत्त योग से प्राण व्यपरोपण (भाव हिंसा) अवश्य होता है। गोम्मट्टसार में पंद्रह प्रकार के प्रमादों का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है-

चार प्रकार के विकथा, चार प्रकार के कषाय, पाँच प्रकार की इन्द्रियाँ, एक निद्रा तथा एक प्रणय इस प्रकार प्रमाद पंद्रह प्रकार के हैं।

वैयावृत्ति से तीन काल के सभी तीर्थकर आदि पूजित होते

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छुप गया कोई रे.....)

वैयावृत्ति महान् है तीर्थकर (भी) बताते, उत्कृष्ट वैयावृत्ति करे वे तीर्थकर बनते।
अठारह गुणों से वे मंडित भी होते, सातिशय पुण्य से वे तीर्थकर बनते॥ (स्थायी)

आहार-औषधि-ज्ञान-अभयदान देते, वसतिका व उपकरण दान देते।

शरीर मर्दन व उपसर्ग दूर करते, मलमूत्र विसर्जन से वैयावृत्ति करते॥ (1)

उनसे तीन काल के सभी तीर्थेश होते पूजित, सिद्ध-साधु-धर्म भी होते पूजित।

तीर्थेशों की आज्ञा पालन से ये सभी होते, नवकोटि से जो वैयावृत्ति करते॥ (2)

वैयावृत्ति करते वे पात्र-लाभ करते, दुर्गुण नाशकर वे (भी) सुगुणी होते।

दाता व पात्र दोनों (भी) उपकृत होते, दान-धर्म पुण्य को भी परस्पर पाले॥ (3)

आहार दान में ही पंचाश्रय (भी) होते, पंचकल्याणक में (भी) पंचाश्रय न होते।

इसी से सिद्ध होती वैयावृत्ति की महिमा, धर्मतीर्थ-दानतीर्थ दोनों की गरिमा॥ (4)

वैयावृत्ति अंतरंग तप साधु भी करते, ज्ञानदान सेवादि से साधु की करते।

स्वाध्याय से भी महान् तप वैयावृत्ति बताया, वात्सल्य विनय आदि गुण सह बताया॥ (5)

वैयावृत्ति न करे वे धर्म बाह्य होते, तीर्थकर आज्ञा भंग धर्मनाश करते।

आचार लोप आत्मा व साधु त्याग करते, प्रवचन लोप कर वे मिथ्यादृष्टि होते॥ (6)

अतः वैयावृत्ति महान् जीवन्त धर्म, इसके बिना न प्रवर्ते मोक्ष का मार्ग।

निश्चय-व्यवहारमय होता मोक्षमार्ग, 'कनक' सेवन करता दोनों ही मार्ग॥ (7)

नन्दौड़, दिनांक 19.11.2015, प्रातः 6.30

प्राचीन नीतिकारों ने भी कहा है-

परोपकाराय फलंति वृक्षा परोपकाराय वहन्ति नद्याः।

परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय सतां प्रवृत्तयः॥

परोपकार के लिए जीवन भर वृक्ष, जीवन शक्ति प्रदायक अमृत तुल्य उत्तमोत्तम फल देते हैं। परोपकार के लिए नदियाँ शीतल मधुर जल लेकर बहती हैं। परोपकार के लिए गाय अमृत तुल्य दूध जीवन भर देती हैं। इसी प्रकार परोपकार के लिए सज्जन

सतत प्रयत्नशील रहता है।

वैयावृत्ति का वर्णन भगवती आराधना में निम्न प्रकार से किया है-
सत्तीए भत्तीए विज्जावच्चुज्जदा सदा होइ।

आणाए णिज्जरिति य सबालउड्डाउले गच्छे।। (306)

बालमुनि और वृद्धमुनियों से भरे हुए इस गण में सर्वज्ञ की आज्ञा से सदा अपनी शक्ति और भक्ति से वैयावृत्ति करने में तत्पर रहो। सर्वज्ञदेव की आज्ञा है कि वैयावृत्ति करना चाहिए। वैयावृत्य तप है और तप से निर्जरा होती है।

सेज्जागासणिसेज्जा उवधी पडिलेहणाउवग्गहिदे।

आहारोसहवायणविकिंचणुव्वत्तणादीसु।। (307)

सोने के स्थान बैठने के स्थान और उपकरणों की प्रतिलेखना करना, योग्य आहार, योग्य औषध का देना, स्वाध्याय कराना, अशक्त मुनि के शरीर के मल को शोधन करना, एक करवट से दूसरी करवट लिटाना ये उपकार वैयावृत्य है।

अध्यादाणतेण सावयरायणदीरोधगासिवे ऊमे।

वेज्जावच्चं उत्तं संगहसारक्खणोवेदं।। (308)

जो मुनि मार्ग के श्रम से थक गये हैं उनके पैर आदि दबाना, जिन्हें चोरों ने सताया है, जंगली जानवरों से, दुष्ट राजा से, नदी को रोकने वालों से और मारी रोग से जो पीड़ित है विद्या आदि से उनका उपद्रव दूर करना, जो दुर्भिक्ष में फँसे हैं उन्हें सुभिक्ष देश में लाना, आप न डरे इत्यादि रूप से उन्हें धैर्य बंधाना तथा उनका संरक्षण करना वैयावृत्य कहा है।

वैयावृत्य न करने की निन्दा

अणिगुहिदबलविरिओ वेज्जावच्चं जिणोवदेसेण।

जदि ण करेदि समत्थो संतो सो होदि णिद्धम्मो।। (309)

अपने बल और वीर्य को न छिपाने वाला जो मुनि समर्थ होते हुए भी जिन भगवान् के द्वारा कहे हुए क्रम के अनुसार यदि वैयावृत्ति नहीं करता है तो वह धर्म से बहिष्कृत हो जाता है यह इस गाथा का अभिप्राय है।

तित्थयराणाकोवो सुदधम्मविराधणा अणायारो।

अप्पापरोपवयणं च तेण णिज्जूहिंद होदि।। (310)

वैयावृत्य न करने से तीर्थकरों की आज्ञा का भंग होता है। शास्त्र में कहे गये धर्म का नाश होता है। आचार का लोप होता है और उस व्यक्ति के द्वारा आत्मा,

साधुवर्ग और प्रवचन का परित्याग होता है। तप में उद्योग न करने से आत्मा का त्याग होता है। आपत्ति में उपकार न करने से मुनिवर्ग का त्याग होता है और शास्त्र विहित आचरण न करने से आगम का त्याग होता है।

गुणपरिणामो सद्भा वच्छलं भक्तिपत्तलंभो य?

संधाणं तव पूया अब्बोतिच्छती समाधी य।। (311)

वैयावृत्य करने का पहला गुण है 'गुण परिणाम' अर्थात् जो वैयावृत्य करता है उसकी पीड़ित साधु के गुणों में वासना होती है कि मैं भी ऐसा बनूँ और जिस साधु की वैयावृत्य की जाती है उसकी सम्यक्त्व आदि गुणों में विशेष प्रवृत्ति होती है। इसके सिवाय श्रद्धा, वात्सल्य, भक्ति, पात्र का लाभ, संधान अपने में गुण पूजा छूट गये हैं इनका पुनः आरोपण, तप, धर्म, तीर्थ की परंपरा का विच्छेद न होना तथा समाधि ये गुण हैं।

आणा संजमसाखिल्लदा य दाणं च अविदिगिंछा य।

वेज्जावच्चस्स गुणा पभावणा कज्जपुण्णाणि।। (312)

सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट वैयावृत्य करने से सर्वज्ञ की आज्ञा का पालन होता है। आज्ञा पालन से आज्ञा संयम होता है। वैयावृत्य करने वाले का उपकार होता है। निर्दोष रत्नत्रय का दान होता है। संयम में सहायता होती है। विचिकित्सा-ग्लानि दूर होती है। धर्म की प्रभावना होती है और कार्य का निर्वाह होता है।

इय दढगुणपरिणामो वेज्जावच्चं करेदि साहुस्स।

वेज्जावच्चेण तदो गुणपरिणामो कदो होदि।। (316)

इस प्रकार ऊपर कहे गये यति के गुणों में जिसका परिणाम दृढ़ होता है वह साधु की वैयावृत्य करता है। वैयावृत्य करने से गुण परिणाम होता है। आशय यह है कि इस यति में जो गुण हैं यदि मैं इनकी सेवा न करूँगा तो ये गुण नष्ट हो जायेंगे। ऐसा जो चित्त में विचारता है वह उन गुणों में परिणत होता है और जिसकी सेवा की है उसकी गुणों में परिणति होती है। अर्थात् वैयावृत्य करने वाला स्वयं उन गुणों से सुवासित होता है और जिसका वैयावृत्य किया जाता है वह यति अपने गुणों से च्युत नहीं होता। अतः अपने और दूसरों के उपकार के लिए वैयावृत्य कहा है।

जह जह गुणपरिणामो तह तह आरूहइ धम्मगुणसेढिं।

वड्ढदि जिणवरमग्गे णवणवसंवेगसड्ढावि।। (317)

जैसे-जैसे गुण परिणाम होते हैं वैसे-वैसे चारित्र्य रूप गुणों की सीढ़ी पर चढ़ता

है, और जिनेन्द्र के मार्ग में नई-नई संसार भीरुता और श्रद्धा भी बढ़ती है। यहाँ गुण शब्द से गुणों को विषय करने वाला स्मरण ज्ञान कहा गया है। तब यह अर्थ होता है- जैसे-जैसे यति के गुणों का स्मरण होता है वैसे-वैसे चारित्र गुण पर आरोहण करता है। जो यति के गुणों को भूल जाता है वह उसमें प्रयत्न नहीं करता। उनके गुणों का स्मरण करने से उनमें रूचि पैदा होती है। भव्य जीव गुणों के अनुरागी होते हैं। संसार से भय और श्रद्धा यति को रत्नत्रय में दृढ़ करती है। इस गाथा से श्रद्धा गुण का कथन किया। आगे कहते हैं कि गुणों के स्मरण से उनमें रूचि होती है। रूचि बढ़ने पर सम्यग्दर्शन का वात्सल्य नामक गुण होता है।

सङ्गाए वड्डियाए वच्छल्लं भावदो उक्कमदि।

तो तिव्वधम्मराओ सव्वजगसुहावहो होइ॥ (318)

श्रद्धा के बढ़ने पर मुनि मन से वात्सल्य करते हैं। उससे धर्म में तीव्र राग होता है। धर्म में तीव्र राग समस्त जगत् में जो इन्द्रिय जन्य और अतीन्द्रिय सुख है उसे लाता है अथवा धर्म में तीव्र राग रखने वाला यति सब सुख को प्राप्त होता है। इस गाथा से वात्सल्य का कथन किया।

वैयावृत्य भी भक्ति

अरहंतसिद्धभक्ती गुरुभक्ती सव्वसाहुभक्ती य।

आसेविदा समग्गा विमला वरधम्मभक्ती य॥ (319)

इस भव से पूर्व तीसरे भव में दर्शनविशुद्धि आदि परिणाम विशेष से जिसने तीर्थकरत्व नामक आतिशयशाली कर्म का बंध किया है जो स्वर्गावतरण आदि पाँच महाकल्याण का भागी है, जो कल्याण किसी अन्य को प्राप्त नहीं होते, घातिकर्मों के विनाश से जिसने त्रिकालवर्ती सब द्रव्यों के स्वरूप को प्रकाशित करने में पटु निरतिशय ज्ञान प्राप्त किया है, दर्शन-मोह के क्षय से जिन्हें वीतराग सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है, चारित्र मोह के क्षय से जिसने वीतरागता प्राप्त की है, वीर्यातराय कर्म के प्रक्षय से जिनमें अनंत वीर्य प्रकट हुआ है, जिनके संसार का अंत आ गया है उन भव्य जीवों का उद्धार करने की प्रतिज्ञा से जो बद्ध है, जो आठ महाप्रतिहार्य और 34 अतिशय विशेष से युक्त हैं वे अर्हंत हैं। मिथ्यात्व आदि से परिणामों से आये आठ कर्मों के बंधन से जो छूट चुके हैं, जो अजर, अमर, अव्याबाध गुण से युक्त हैं अनुपम अनंत सुख से शोभित हैं जिसके सदा प्रज्ज्वलित रहने वाला आवरण रहित ज्ञानमय शरीर है, जो पुरुषाकार है और जिन्होंने परमात्मा अवस्था को पा लिया है वे

सिद्ध हैं। इन अर्हतों और सिद्धों की भक्ति अरिहंत सिद्ध भक्ति है। गुरु शब्द से यहाँ आचार्य, उपाध्याय का ग्रहण किया है। इनकी भक्ति गुरुभक्ति है और सर्वसाधुओं की भक्ति तथा प्रधान धर्म रत्नत्रय में संपूर्ण निर्मल भक्ति। इन अर्हत आदि का ऊपर कहा वैयावृत्य करने से उनकी भक्ति की गई जानना। रत्नत्रय के धारकों का उपकार करने से उनका आदर ही उनकी भक्ति है। अभिप्राय यह है कि वैयावृत्य से अर्हत आदि में भक्ति व्यक्त होती है।

वैयावृत्य का एक गुण पात्र लाभ

पंचमहत्त्वयगुत्तो णिग्गहिदकसायवेदणो दंतो।

लब्भदि हु पत्तभूदो णाणासुदरयणणिधिभूदो।। (321)

वैयावृत्य करने से पाँच महाव्रतों के द्वारा कर्मों के आस्रव को रोकने वाला, कषाय वेदना का निग्रह करने वाला कषाय आत्मा को संतप्त करती है इसे वेदना कहा है, दान्त अर्थात् जिसके रागजन्य दोष शांत हो गये हैं, वस्तु तत्व को जानने से वैराग्य भावना होती है और वैराग्य भावना से राग शांत होता है। इससे दंत कहा है तथा जो नाना प्रकार के शास्त्रों रूपी रत्नों का निधि है, नाना शास्त्रों का ज्ञाता है ऐसा पात्र प्राप्त होता है अर्थात् वैयावृत्य करने वाले को वैयावृत्य के लिए ऐसे सत्पात्र मुनि प्राप्त होते हैं यह एक महान् लाभ है।

दंसणणाणे तव संजमे य संधाणदा कदा होइ।

तो तेण सिद्धिमग्गे ठविदो अप्पा परो चेव।। (322)

किसी निमित्त से सम्यग्दर्शन आदि में कोई त्रुटि हो गई हो तो वैयावृत्य करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्त्व और सम्यक्चारित्र में पुनः नियुक्ति हो जाती है। अतः उसी वैयावृत्यकारी के द्वारा स्वयं आत्मा तथा जिसकी वह वैयावृत्य करता है उसकी रत्नत्रय में पुनः स्थिति होती है। इससे दोनों का ही लाभ है। इस गाथा के द्वारा संधान पद का व्याख्यान किया गया है।

वेज्जवच्चकरोपुण अणुत्तरं तवसमाधिमारूढो।

पप्फोडिंतो विहरदि बहुभवबाधाकरं कम्मं।। (323)

वैयावृत्य करने वाला मुनि उत्कृष्ट वैयावृत्य नामक तप में एकाग्र होकर अनेक भवों में कष्ट देने वाले कर्मों की निर्जरा करता हुआ विहार करता है।

जिणसिद्धसाहुधम्मा अणागदातीदवट्टमाणगदा।

तिविहेण सुद्धमदिणा सब्बे अभिपूइया होंति।। (324)

शुद्धचित्त से वैयावृत्य करने वाले के द्वारा भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के सब तीर्थकर, सिद्ध, साधु और धर्म, मन-वचन-काय से पूजित होते हैं। तीर्थकरों की आज्ञा के पालन से सभी तीर्थकर आदि इसके द्वारा पूजित होते हैं तथा दस प्रकार के धर्मों में एक तप धर्म भी है और वैयावृत्य उसका एक भेद है अतः वैयावृत्य में आदर भाव रखने तथा वैयावृत्य करने से धर्म पूजित होता है।

आइरियधारणाए संघो सव्वो वि धारिओ होदि।

संघस्स धारणाए अब्बोच्छिति कया होई।। (325)

आचार्य का धारण करने से समस्त संघ धारित होता है। क्योंकि आचार्य रत्नत्रय ग्रहण करते हैं और जो साधु रत्नत्रय को धारण किये हुए होते हैं उन्हें उसमें दृढ़ करते हैं। उत्पन्न हुए अतिचारों को दूर करते हैं। आचार्य के उपदेश के प्रभाव से ही संघ गुणों के समूह को धारण करता है अतः आचार्य के धारण से संघ का धारण होता है। आचार्य के बिना संघ का धारण संभव नहीं है। संघ के धारण से अभ्युदय और मोक्ष के सुख का साधन जो धर्म है उस धर्मतीर्थ का विच्छेद नहीं होता। उपाध्याय आदि सभी समस्त कर्मों के विनाश की साधना करते हैं इसलिए साधु शब्द से उन सबका ग्रहण होता है।

साधुस्स धारणाए वि होइ तह चेव धारिओ संघो।

साधु चेव हि संघो ण हु संघो साहुवदिरित्तो।। (326)

जैसे आचार्य की धारणा में संघ की धारणा होती है वैसे ही एक साधु की धारणा से अर्थात् वैयावृत्य करने से साधु समुदाय की धारणा होती है।

शंका-एक साधु की धारणा से सब साधु समुदाय की धारणा कैसे हो सकती है? क्योंकि समुदाय और व्यक्ति में तो भेद है?

समाधान-साधु ही संघ है। साधुओं से भिन्न कोई संघ नामक वस्तु नहीं है। समुदाय और उसके अवयव व्यक्ति में कथंचित् अभेद होता है। यह इन गाथाओं के द्वारा माना है।

गुणपरिणामादीहिं अणुत्तरविहीहिं विहरमाणेण।

जा सिद्धिसुहसमाधी सा वि य उवगूहिया होदि।। (327)

श्रद्धा, वात्सल्य, भक्ति, पात्रलाभ, संधान, तप, पूजा, तीर्थ की अव्युच्छिति इत्यादि गुणों का उत्कृष्ट क्रम के साथ आचरण करने वाले मुनि को जो सिद्धि सुख में एकाग्रता है वह भी प्राप्त होती है, क्योंकि कार्य में समाधान हुए बिना कारण में आदर

नहीं होता। यदि चित्त में घट बनाने की भावना न हो तो उसके उपायभूत जो दण्ड आदि कारण है उनमें मनुष्य प्रवृत्त नहीं होता। यहाँ गुणपरिणाम आदि सिद्धि सुख के उपाय है। सिद्धिसुख में एकाग्रता के बिना उपाय नहीं हो सकते। यह अभिप्राय है।

अणुपालिदा य आणा संजमजोगा य पालिदा होंति।

णिग्गहियाणि कसायिंदियाणि साखिल्लदा य कदा।। (328)

जो वैयावृत्य करता है तीर्थकरों की आज्ञा पालन करता है। इस कथन में गाथा के 'आणा' पद का व्याख्यान किया गया है। संयम योग का पालन होता है इस कथन में संयम पद का व्याख्यान किया गया है, क्योंकि आचार्य आदि का संयम के साथ संबंध है। जो आचार्य आदि व्याधि से पीड़ित होते हैं और बिना संक्लेश के रोग परिषह को सहने में असमर्थ होते हैं उनकी वैयावृत्य करने से संयम की रक्षा होती है अथवा 'संयम योग' अर्थात् अनशन आदि तप के भेदों की रक्षा होती है। अपने भी और दूसरों के तप की भी रक्षा होती है। दूसरों से वैयावृत्य कराकर अथवा वैयावृत्य करने की अनुमोदना करके स्वास्थ्य को प्राप्त कर अपने तप की रक्षा करता है तथा दूसरों की आपत्ति को दूर करके, उनके स्वास्थ्य लाभ करके शक्ति प्राप्त करने पर उनकी संयम की रक्षा होती है। दूसरों की सहायता का कथन गाथा के उत्तरार्द्ध से करते हैं। उसमें 'जम्हा' पद का अध्याहार करके इस प्रकार अर्थ होता है-यतः वैयावृत्य करने वाला कषाय और इन्द्रियों के दोष बतलाकर कषाय और इन्द्रियों का निग्रह करता है। अतः वह दूसरों को सहायता प्रदान करता है।

अदिसयदाणं दत्तं णिव्विदिगिंच्छा दरिसिदा होइ।

पवयणपभावणा वि य णिव्वूढं संघकज्जं च।। (329)

वैयावृत्य करने वाला उक्त प्रकार से दूसरे साधुओं को रत्नत्रय का दान करता है इसलिए वह सातिशय दान का दाता होता है तथा वैयावृत्य से सम्यग्दर्शन का निर्विचिकित्सा नामक गुण प्रकाशित होता है। शरीर का मल-मूत्रादि बिना ग्लानि के उठाने से द्रव्य विचिकित्सा दूर होती है। आगम में कहे हुए धर्म का पालन करने से प्रवचन की प्रभावना भी होती है और संघ का जो करने योग्य कार्य है उसका भी संपादन होता है। इस गाथा में "कज्जपुण्णाणि" पद का व्याख्यान किया है।

गुणपरिणामादीहिं य विज्जावच्चुज्जदो समज्जेदि।

तित्थयरणामकम्मं तिलोयसंखोभयं पुण्णां।। (330)

वैयावृत्य में तत्पर साधु गुणपरिणाम आदि कारणों के द्वारा उस तीर्थकर नामक

पुण्यकर्म का बंध करता है जो तीनों लोकों में हलचल पैदा करता है।

एदे गुणा महल्ला वेज्जावच्चुज्जदस्स बहुया य।

अप्पट्टियो हु जायदि सज्जायं चव कुव्वंतो॥ (331)

वैयावृत्य में तत्पर साधु में बहुत से गुण होते हैं। जो केवल स्वाध्याय ही करता है वह तो अपने ही प्रयोजन में लगा रहता है। किन्तु वैयावृत्य करने वाला अपना और दूसरों का उपकार करता है। अर्थात् केवल स्वाध्याय करने वाले साधु से वैयावृत्य करने वाला विशिष्ट होता है। स्वाध्याय करने वाले साधु पर यदि विपत्ति आवे तो उसे वैयावृत्य करने वाले साधु का ही मुँह ताकना पड़ता है।

यहाँ यह तात्पर्य है कि जो कोई अपने शरीर की पुष्टि के लिए शिष्यादिकों के मोह में पड़कर उनके लिए पाप कर्म या हिंसा कर्म की इच्छा नहीं रखता है उसके यह व्याख्यान शोभनीय है। परन्तु यदि वह अपने व दूसरों के लिए पापकर्म की इच्छा करता है, वैयावृत्य आदि अपनी अवस्था के योग्य धर्म कार्य की अपेक्षा से ही नहीं चाहता है उसके तब से सम्यग्दर्शन ही नहीं है। मुनि व श्रावकपना तो दूर ही रहा।

यहाँ पर आचार्यश्री ने संसारी भोगवादी, आलसी व्यक्तियों के संबंधी मनोविज्ञान का नग्न जीवन्त रूप प्रकट किया है। अधिकांश संसारी मोही जीव उपरोक्त सिद्धांत को मनसा-वचसा प्रयोग में लाते हैं। अर्थात् वे राग-भोग, धनोपार्जन, स्वार्थसिद्धि के समय में अनर्गल रूप से हिंसा करता है, पाप करता है परन्तु जब धर्मकार्य का अवसर आता है तब वह हिंसा का बहाना लेकर उस धर्मकार्य से विमुख हो जाता है। नीतिकार ने कहा भी है-

भोगरागं स्वयुवति सुखं नित्यमिच्छन्ति जैनाः।

दानंपूजादिकुरू-कुरू न मे नोऽद्य वारो वन्देन्न॥

नामधारी जैन इन्द्रिय जनित भोग, राग-रंग युवती जनित सुख को तो नित्य चाहता है, परन्तु जब दानादि, धार्मिक कार्य का अवसर आता है तब धर्म से विमुख हो अनेक बहाने बनाता है और कहता है आज का वार अच्छा नहीं है कल करेंगे। एक कवि ने कहा भी है-

प्रभु भजन को आलसी भोजन को तैयार।

ऐसे नर मूढ़न को बार बार धिक्कार।

ऐसा मूढ़ व्यक्ति भोग के लिए सर्वदा जागृत रहता है, कटिबद्ध रहता है, आलसी रहता है। भोग के लिए उसका सिद्धांत है-

कल करे सो आज कर आज करे सो अब।
पल में प्रलय होयेगी बहुरि करेगा कब।।
परन्तु ऐसे भोगवादी का सिद्धांत धर्म करने के लिए दूसरा है-
आज करे सो कल कर, कल करे सो परसो।
जल्दी-जल्दी क्या पड़ी जिन्दा रहना बरसो।।

अल्प पाप बंध कारक शुभकाम भी करणीय (शुभ बिना अशुभ (पाप) ही संभव न कि शुद्ध (मोक्ष) संभव)

-आचार्य कनकनन्दी

(तर्ज : एकांत मौन में मैं.....)

पावन भाव से जो धर्म करता, ख्याति पूजा लाभ परे कार्य करता।
सिंधु के समान वह पुण्य बांधता, बिन्दु के समान वह पाप बांधता।। (धृ.)
सेवा दान व जो परोपकार करता, आहार औषधि से जो वैयावृत्ति करता।
मंदिर मूर्ति का (जो) पंचकल्याण करता, पाप से अधिक वह पुण्य बांधता।।
पाप निर्जरा भी उसकी अधिक होती, आत्मविशुद्धि भी अधिक होती।
आत्मिक उन्नति भी इसी से होती, परंपरा से उसे मुक्ति मिलती।। (1)
असि मसि कृषि वाणिज्य सेवा से, पुण्य बंध न होता शिल्प काम से।
ये सब होते हैं आरंभ (के) काम, जीविका निर्वाह हेतु भौतिक/(सांसारिक) काम।।
पाप बंध इसी से होता प्रचुर, द्रव्य भाव हिंसा होती प्रचुर।
अविपाक निर्जरा न होती इसी से, मोक्ष उपलब्धि न होती इसी से।। (2)
भोगोपभोग व फैशन-व्यसनो से, हिंसा झूठ चोरी कुशील संग्रह से।
ईर्ष्या द्वेष घृणा व तृष्णा मोह से, पाप ही बंध होता सांसारिक काम से।।
मोक्ष हेतु शुभकाम सदा करणीय/(विधेय), अन्यथा अशुभ काम होगा निश्चय।
अशुभ कार्य से जो पाप संचय होता, शुभकार्य से उसे क्षय विधेय।। (3)
शुभ से ही शुद्ध होता है प्राप्त, अशुभ से शुद्ध न होता प्राप्त।
शुभ बिना अशुभ होगा अवश्य, अशुभ से पाप होगा अवश्य।।
सुलभ होते हैं अशुभ के काम, सुलभ न होते हैं शुभ के काम।

अशुभ से परे शुभ-शुद्ध ही ग्राह्य, 'कनकनन्दी' को अध्यात्म प्रिया॥ (4)

नन्दौड़, दिनांक 22.11.2015, रात्रि 11.00

विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत 'पुण्यपाप मीमांसा', 'भाग्य पुरुषार्थ, कर्म सिद्धांत'
आदि ग्रंथ पठनीय।

अल्पबंधक परोपकार भी करणीय है

जोणहाणं णिरवेक्खं सागारणगारचरियजुत्ताणं।

अणुकंपयोवयारं कुव्वदु लेवो जदि वि अण्पो॥ (251) प्र.सा.

यद्यपि अल्प कर्मबंध होता है तथापि शुभोपयोगी पुरुष निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्ग पर चलने वाले श्रावकों की तथा मुनियों की सेवा व उनके साथ दयापूर्वक धर्म प्रेम या उपकार शुद्धात्मा की भावना को विनाश करने वाले प्रसिद्धि पूजा लाभ की इच्छा आदि भावों से रहित होकर करें।

जो अनुकम्पापूर्वक परोपकार स्वरूप प्रवृत्ति उसके करने से यद्यपि अल्प लेप तो होता है तो भी अनेकांत के साथ मैत्री से जिनका चित्त पवित्र हुआ है ऐसे शुद्ध जैनों के प्रति जो कि शुद्धात्मज्ञान दर्शन में प्रवर्तमान चर्या के कारण सागार-अनागार चर्या वाले हैं उनके प्रति शुद्धात्मा की उपलब्धि के अतिरिक्त अन्य सबकी अपेक्षा किये बिना ही उस प्रवृत्ति के करने का निषेध नहीं है, किन्तु अल्प लेप वाली होने से सबके प्रति सभी प्रकार से वह प्रवृत्ति अनिषिद्ध हो ऐसा भी नहीं है, क्योंकि इसमें (अर्थात् सबके प्रति सभी प्रकार से की जाये तो) उसी प्रकार की प्रवृत्ति से और पर के निज के शुद्धात्म परिणति की रक्षा नहीं हो सकती। (तत्वप्रदीपिका)

समीक्षा-इस गाथा में कुंदकुंद आचार्य ने एक विकल्पात्मक महत्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि जब तक शुद्धोपयोग की प्राप्ति नहीं होती तब तक शुभोपयोग में इच्छापूर्वक, उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति करो, भले उससे आनुषंगिक रूप में थोड़ा बंध भी क्यों न हो। जैसे कृषक व्यापारी आदि पहले बीज, पूँजी आदि खर्च करते हैं परन्तु उसके फलस्वरूप आगे जाकर अधिक लाभ होता है। यदि पहले बीज या पूँजी के भय से कृषि या व्यापार नहीं किया जायेगा तो अधिक लाभ से वंचित रहना पड़ेगा। आचार्य समंतभद्र स्वामी ने तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए कहा है-हे भगवान्! जो आपकी द्रव्यादि से पूजा करते हैं उन्हें थोड़ा पापबंध होता है पर वह पापबंध दोषकारी नहीं है, क्योंकि उससे अधिक पुण्य का संचय होता है। यथा-

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।

दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ।। (3)

पृ. 71 (स्वयं. स्तो.)

हे भगवन्! इन्द्र आदि के द्वारा पूजनीय तथा कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले मनुष्य के जो सराग परिणति अथवा आरंभादि जनित थोड़ा-सा पाप का लेश होता है वह बहुत भारी पुण्य की राशि में दोष के लिए समर्थ नहीं है, क्योंकि विष की अल्प मात्रा शीतल एवं आह्लादकारी जल से युक्त समुद्र में दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

हे नाथ! पूजा की सामग्री जुटाते समय आरंभ आदि के कारण पूजा करने वाले मनुष्य के जो अल्पतम द्रव्य हिंसा होती है तथा सरागपरिणति के कारण अल्पतम भाव हिंसा होती है उससे पूजा करने वाले का कुछ अहित नहीं होता, क्योंकि वीतराग जिनेन्द्र की पूजा करने से जो विशाल पुण्य उत्पन्न होता है उसके समक्ष वह अल्पतम हिंसा नगण्य होती है ठीक उस तरह जिस तरह कि शीतल और आनन्ददायी जल के समुद्र में विष की मानो एक कणिका हो।

धर्म निर्मूलं विध्वंस सहन्ते न प्रभावका।

विना सावद्य लेशेन न स्याद्धर्मप्रभावना।।

धर्म निर्मूल विनाश को धर्मवीर, कर्तव्यनिष्ठ, धर्मप्रभावक, तेजस्वी व्यक्ति सहन नहीं करते हैं। धर्म की प्रभावना के लिए निर्मल भावना से कार्य करते हुए आनुषंगिक रूप से जो पाप बंध हो जाता है वह दोषकारक नहीं होता है। उदाहरण के लिए मंदिर बनाने, मूर्ति बनाने, तीर्थयात्रा, आहारदान देने में, पंचकल्याण पूजादि में अवश्य ही कुछ न कुछ पाप बंध होता ही है। पर वह पाप-पुण्य के समक्ष अत्यंत अल्प होने के कारण नहीं के बराबर है। इसका मुख्य कारण है भाव। भाव से ही पाप बंध, पुण्य बंध एवं निर्जरा होती है। एक धीवर मछली पकड़ने के लिए दिनभर जलाशय में जाल बिछाता है परन्तु एक भी मछली पकड़ नहीं पाता, तथापि वह पापी है। कृषक खेत में काम करते लाखों-करोड़ों जीव मरने के बाद भी धीवर के जैसे पापी नहीं है। सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक चम्पू में हिंसा का और अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन करते हुए कहा भी है-

जीवन्तु वा म्रियन्ता वा प्राणिनोऽमी स्वकर्मतः।

स्वं विशुद्ध मनोऽहिंसन् हिंसक पापभाग् भवेत्॥ (253)

शुद्ध मार्ग मतोद्योगः शुद्ध चेतो वचो वपुः।

शुद्धान्तरात्म संपन्नो हिंसकोऽपि न हिंसकः॥ (254)

ये प्राणी अपने-अपने कर्म के उदय से जीये या मरे, किन्तु जो मानव अपना मन विशुद्ध कषाय रहित करता है वह अहिंसक है जो और अपने मन को अशुद्ध कषाय युक्त करता है वह हिंसक और पापी है। जो शुद्ध मार्ग (सदाचार) में प्रयत्नशील है, जिसका मन, वचन व काय शुद्ध है एवं जिसकी अंतरात्मा शुद्ध (कषाय भाव से कलुषित नहीं) है वह हिंसा करके भी हिंसक नहीं है।

सुखदुःखा विधातापि भवेत्याप समाश्रयः।

पटो मध्य विनिक्षिप्तं वासः स्यान्मलिनं न किम्॥ (256)

चंचल मन वाला प्राणी दूसरों को सुख-दुःख न देता हुआ भी पाप बंध करने वाला हो जाता है। क्या कपड़े की मञ्जुषा में रखा हुआ वस्त्र मलिन नहीं होता? अर्थात् वैसे ही भोगों की ओर दौड़ता हुआ मन भी क्या अशुभ ध्यान के कारण मलिन होकर पाप बंध करने वाला नहीं होता है? अवश्य होता है।

पुण्यायापि भवेद् दुखं पापायापि भवेत्सुखम्।

स्वस्मिन्नन्यत्र वा नीतमचिन्नयं चित्त चेष्टितम्॥ (225)

स्वयं को व दूसरों को दुःख देने से भी पुण्य कर्म का बंध होता है और सुख देने से भी पाप कर्म का बंध होता है, क्योंकि मन की चेष्टाएँ चिंतवन के लिए अशक्य हैं। अभिप्राय यह है कि यदि तपश्चर्या व कष्ट सहन शुभ परिणामों से यथाविधि करे जाते हैं तो उससे पुण्य कर्म का बंध होता है परन्तु यदि अशुभ परिणामों से किये जाते हैं तो उनसे पाप बंध ही होगा। इसी तरह शुभ परिणामों से युक्त जीवों द्वारा दूसरों को दुःख से भी पुण्य बंध होता है, क्योंकि मन की चेष्टाएँ अचिन्त्य होती हैं।

बहिष्कार्यासमर्थोऽपि हृदि हृद्येव स संस्थिते।

परं पापं परं पुण्यं परमं च पदं भवेत्॥ (257)

शरीर आदि में हिंसा व परोपकार आदि अशुद्ध व शुद्ध कार्य करने में असमर्थ होने पर भी यदि चित्त, पाप में लीन रहता है तो (चित्त) वह अशुभ ध्यान द्वारा तीव्रतम पापबंध करता है।

समंतभद्राचार्य ने कहा भी है कि-

पापं ध्रुवं परे दुखात् पुण्यं च सुखतो यदि।

अचेतनाऽकषायौ च बध्येयातां निमित्ततः॥ (92) (आ.मी.) अ.9

कुछ लोगों की मान्यता है कि दूसरे प्राणी को दुःख देने से पाप बंध ही होता है

और सुख देने से पुण्य बंध होता है। परन्तु उक्त मान्यता सही नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से तो विष और शस्त्रादि दूसरों को दुःख देने में निमित्त हैं उन्हें पाप बंध होना चाहिए एवं कषाय रहित वीतराग दूसरे को सुख देने में निमित्त है उसे पुण्य बंध का प्रसंग हो जायेगा तो मुक्ति संघटित नहीं होगी। लोक में ऑपरेशन करने वाला वैद्य भी बीमार को कष्ट देने में निमित्त है तो उसे भी पाप बंध का प्रसंग हो जायेगा।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात् पापं च सुखतो यदि।

वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यात्रिमित्ततः॥ (93)

कुछ लोगों की मान्यता है कि अपने को दुःख देने से पुण्य बंध होता है और सुख देने से पाप बंध होता है। ऐसा मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से तो वीतराग विद्वान् मुनि को भी पुण्य पाप कर्मों का बंध करने का प्रसंग हो जायेगा। क्योंकि वह तपश्चर्या द्वारा अपने को दुःखी व ज्ञानाभ्यास द्वारा अपने को सुखी बनाता है तब मुक्ति किसे होगी।

विशुद्धि संक्लेशागं चेत स्वपरस्थं सुखाऽसुखं।

पुण्यपापास्रवो युक्तौ न चैद्व्यर्थं वार्हतः॥ (1)

पुण्य पाप बंध की व्यवस्था हमारे विशुद्ध व संक्लिष्ट परिणामों पर अवलम्बित है। इससे अपने लिए या दूसरों के लिए दिये हुए सुख व दुःख यदि क्रमशः शुभ परिणाम व अशुभ परिणामपूर्वक है तब पुण्य बंध और पाप बंध होता है। अर्थात् यदि हम दूसरे प्राणी को कषायवश दुःख देते हैं तो हमें पाप बंध ही होगा और यदि हम शुभ परिणामों से दूसरों को सुख देते हैं तो हमें पुण्य बंध ही होगा, यदि ऐसा नहीं है तो आपके मन में पुण्यास्रव और पापास्रव निष्फल है।

अभव्य-पापी जीवों को आत्मज्ञान नहीं मिलता

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छिप गया कोई रे.....)

आत्मज्ञान महान् है अभव्य न पाते/(करते), मोक्ष पाने वाले ही आत्मज्ञान करते। सत्ता-संपत्ति/(डिग्री) हेतु तो मोही ज्ञान करते, आत्म विकास हेतु ज्ञान न करते। (स्थायी) आत्मज्ञान बिना कोई न सुज्ञानी होते, राजा-महाराजा चक्री-देव क्यों न होते। दार्शनिक कवि विज्ञानी लेखक क्यों न होते, आत्मज्ञान बिना वे सभी कुज्ञानी होते। (1) आत्मज्ञान से ही जीव सुज्ञानी होते, सुज्ञानी जीव ही आत्मविश्वासी/(श्रद्धानी) होते। जिससे उनका लक्ष्य महान् होता, समता-शांतिमय अध्यात्म होता। (2)

अतः अन्याय-अत्याचार वे न करते, फैशन-व्यसन व दंभ करते।
शालीन सदाचारी सभ्य वे होते, दया दान सेवा व परोपकार करते।। (3)
मैत्री प्रमोद कारूण्य माध्यस्थ होते, वैर विरोध ईर्ष्या घृणा न करते।
सरल-सहज संतोषी अनिन्दक होते, हिंसा झूठ चोरी कुशील से निवृत्त होते।। (4)
परम आत्मज्ञान हेतु सर्वस्व त्यागते, विद्वान् चक्रवर्ती (तक) भी साधु हो जाते।
आत्म विशुद्धि से पूर्ण आत्मज्ञ होते, अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्य को पाते।। (5)
यही है जीवों का परम-विकास, शुद्ध-बुद्ध-आनंद व ध्रुव स्वभाव।
इंद्र चक्रवर्ती से भी अनंत वैभव, जन्म-जरा-मरण रहित अमृत भाव।। (6)
(ऐसे) परम आत्मज्ञान को मोही न जानते/(मानते), सांसारिक कुज्ञान में ही आसक्त होते।
लौकिक पढ़ाई हेतु (तो) आसक्त होते, स्व-आत्मज्ञान से विमुख होते।। (7)
मद्य व्यसनी यथा मद्य को चाहते, मोहासक्त जीव तथा कुज्ञान चाहते।
जिससे संसार में परिभ्रमण करते, अनंत दुःखों को वे सहन करते।। (8)
स्व-शुद्धात्म ज्ञान ही है परम ज्ञान, जिससे जीवों को मिलता परिनिर्वाण।
अमृतमय यह है आध्यात्म ज्ञान, 'कनकनन्दी' का यह स्व-आत्मज्ञान।। (9)

नन्दौड़, दिनांक 23.11.2015, रात्रि 7.55

मोही स्वभाव को प्राप्त नहीं करता है

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।

मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः।।7।।

शिष्य पुनः प्रश्न करता है-

यदि ये संसार के सुख और दुःख वासना मात्र ही है तब उसका यथार्थ परिज्ञान क्यों नहीं होता है? शिष्य का प्रश्न ये है-यदि वस्तुतः संसार के सुख एवं दुःख अवास्तविक हैं तब उसका परिज्ञान संसार के लोगों को अवास्तविक रूप में क्यों नहीं होता है? आचार्य शिष्य को प्रबोधन देते हैं-

“धातुनाम् अनेक अर्थत्वात्” अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होने के कारण यहाँ लाभ धातु का अर्थ ज्ञान है। जब ज्ञान मोहनीय कर्म के विपाक से आविर्भूत हो जाता है तब वह ज्ञान वस्तु स्वरूप को यथार्थ प्रकाशन करने में असमर्थ हो जाता है। शुद्ध स्वरूप से ज्ञान कथंचित् आत्मा से अभिन्न है और वस्तु स्वरूप को यथार्थ से जानने के लिए पूर्ण समर्थ है परन्तु कर्म परवशता के कारण ज्ञान में/आत्मा में विकार

उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है-जिस प्रकार मल से आबद्ध मणि एक प्रकार का नहीं होता है, एक प्रकार का प्रकाश नहीं देता है उसी प्रकार कर्म से आबद्ध आत्मा भी एक प्रकार का नहीं होता है और एक प्रकार का नहीं जानता है।

प्रश्न-अमूर्तिक आत्मा किस प्रकार मूर्तिक कर्म से आविर्भूत होता है, आबद्ध होता है?

उत्तर-शुद्ध आत्मा अमूर्तिक होते हुए भी संसारी जीव अभी अमूर्तिक नहीं है कर्म से आबद्ध संसारी जीव व्यवहारनय की अपेक्षा मूर्तिक है।

नशे को पैदा करने वाले कोद्रव-कोदों धान्य को खाकर जिसे नशा पैदा हो गया है, ऐसा पुरुष घट, पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता, उसी प्रकार कर्म बद्ध आत्मा पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। अर्थात् आत्मा व उसका ज्ञान गुण यद्यपि अमूर्त है, फिर भी मूर्तिमान कोद्रवादि धान्यों से मिलकर वह बिगड़ जाता है। उसी प्रकार अमूर्त आत्मा मूर्तिमान कर्मों के द्वारा अभिभूत हो जाता है और उसके गुण भी दब सकते हैं।

समीक्षा-सत्य से विपरीत मान्यता श्रद्धा/प्रतीति विश्वास रूप परिणाम व भावों को मोह/मिथ्यात्व कहते हैं। सत्य का पूर्ण साक्षात्कार सर्वज्ञ वीतरागी देव करते हैं। सर्वज्ञ भगवान् ने दिव्य ध्वनि मूलक उस परम सत्य का प्रमाण, नय, निक्षेपों के द्वारा प्रतिपादन किया है, उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य अर्थात् जो उनके द्वारा कहे हुए द्रव्य, तत्त्व पदार्थों में विश्वास नहीं करता, श्रद्धा नहीं करता वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि उसकी श्रद्धारूप दृष्टि विपरीत होने के कारण वह पदार्थ को भी विपरीत रूप श्रद्धान करता है। सिद्धांत चक्रवर्ती नेमीचन्द्र आचार्य गोम्मट्टसार में कहते हैं-

मिच्छाङ्गी जीवो उवङ्गं पवयणं च ण सहहृदि।

सहहृदि असम्भावं उवङ्गं वा अणुवङ्गः॥१८॥

मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हत आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन, इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन प्रवचन अर्थात् परमागम। प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरूक्तियों से प्रवचन शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते हैं तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्या रूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

मदि सुदणाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लेदे जिणुवट्टिं।

जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिण मग्ग लग्गखो।।21।। (रयणसार)

जो मतिज्ञान श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हुए मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के कारण उद्धत होकर स्वयं के मनमाने ज्ञान के द्वारा अपने मत अर्थात् पक्ष को लेकर स्वच्छंद होकर कपोल कल्पित मत का प्रतिपादन करते हैं, जिनवाणी को नहीं मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जिनधर्म से बाह्य हैं। यदि जिनागम को दिखाने पर यथार्थ वस्तु का श्रद्धान करने लगता है और पूर्व कल्पित मत-पक्ष का त्याग करता है तब वह सम्यग्दृष्टि बन जाता है अन्यथा मिथ्यादृष्टि रहता है।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।

ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।।17।।

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभवन करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक, धर्म, वस्तु स्वभाव, मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसंद नहीं करता।

दृष्टान्त-पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे-दूध रसादि को पसंद नहीं करता, उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता है।

इंदिय विसय सुहादिमु मूढमदी रमदि न लहदि तत्त्वं।

बहुदुक्खमिदि ण चिंतदि सो चेव हवदि बहिरप्पा।।29।। (रयणसार)

जो मूढमति इन्द्रिय जनित सुख में रमण करता हुआ उसको सुख मानता है, बहु दुःखप्रद नहीं मानता है, वह आत्म तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

पूर्व संचित मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो स्वयंमेव विपरीत भाव होता है उसे निसर्ग व अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं, जो कुगुरु के उपदेश से विपरीत भाव होते हैं उसे अधिगमज व गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व के कारण जीव अवस्तु में वस्तुभाव, अधर्म में धर्मभाव, कुगुरु में गुरुभाव, कुशास्त्र में सुशास्त्र भाव को धारण करता है। बहिरात्मा केवल शरीर पोषण करता है, अतीन्द्रिय आत्मोत्थ सुख से बहिर्मुख होकर विषय सुख में ही लीन रहता है। बाह्य-भौतिक हानि वृद्धि में अपनी हानि-वृद्धि मानकर सुखी-दुःखी होता है। सामान्य से मिथ्यात्व एक प्रकार होते हुए भी विशेष अपेक्षा अर्थात् द्रव्य-भाव से दो प्रकार, एकांत, विपरीत, संशय, विनय, अज्ञान

की अपेक्षा पाँच प्रकार भी होता है। इसमें सांख्य चार्वाक मत मिलाने से 7 प्रकार का मिथ्यात्व होता है। विशेष रूप से क्रियावादियों के 180, अक्रियावादियों के 84, अज्ञानवादी के 67 और वैयनिकवादियों के 32 इस प्रकार मिथ्यावादियों के 363 भेद होते हैं।

मोही पर को अपनाता

वपुर्गृहं धनं दाराःपुत्रा मित्राणि शत्रवः।

सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते॥४॥

स्व-पर विवेकहीन मूढ़ मोही जीव शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र यहाँ तक कि शत्रु को भी जो कि सर्वथा स्वयं से भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। सर्वथा सर्व प्रकार से अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से जो स्व-स्वरूप से अन्य है, भिन्न है ऐसे परद्रव्य को भी दृढ़तर मोह से आविष्ट जीव अपना मान लेता है। शरीर जो कि अचेतन परमाणुओं से (रक्त, माँस, हड्डी, चर्म आदि) निर्मित होने के कारण अचेतन स्वरूप है उसे भी अपना मान लेता है। इसी प्रकार घर, धन, स्पष्ट रूप से भौतिक जड़ वस्तु से निर्मित है उसे भी अपना मान लेता है। भार्या, पुत्र, मित्र तथा शत्रु जो कि शारीरिक दृष्टि से तथा आत्मिक दृष्टि से भी भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। यहाँ पर शरीर आदि को हितकारी मानता है और शत्रु आदि को मेरा अहितकारी मानकर उसमें भी मेरा शत्रु है ऐसा अपनापन रखता है।

समीक्षा-शुद्ध निश्चयनय से स्वशुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ही स्व-चतुष्टय है और इसमें भिन्न समस्त चेतन-अचेतन द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र, काल भाव से भिन्न है, पर है तथापि मोही जीव मोह के कारण पर आत्म स्वरूप को भी स्व-स्वरूप मान लेता है, जिससे उसकी स्वार्थ सिद्धि होती हो, इन्द्रिय जनित सुख मिलता हो उसको अपना हितकारी मानकर अपना मानता है और राग करता है तथा जिससे स्वार्थ सिद्धि नहीं होती है, इन्द्रिय जनित सुख नहीं मिलता हो उसको अपकारी मानकर उससे द्वेष करता है। एक के प्रति रागात्मक संबंध है तो दूसरे के प्रति द्वेषात्मक संबंध है। मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय कर्म के कारण श्रद्धा रूप से तथा आचरण रूप से शरीर आदि पर वस्तु में मोह करता है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव श्रद्धा रूप से परद्रव्य को पर मानते हुए भी जब तक चारित्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब तक वह पर द्रव्य को व्यवहार रूप से, आचरण रूप से अपना मानता है।

कल्पना शक्ति से रचनात्मकता-प्रगतिशीलता-सफलता

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा....., तुम दिल की.....)

श्रद्धा-प्रज्ञा व अनुभव से...कल्पना शक्ति होती प्रबल...

ध्यान-अध्ययन-मनन-चिन्तन से...कल्पना शक्ति होती प्रबल...

अवग्रह ईहा आवाय धारणा से...कल्पना शक्ति होती प्रबल...

शोध-बोध व विश्लेषण से...कल्पना शक्ति होती प्रबल...(1)...

समता शांति आत्मविशुद्धि से...कल्पना शक्ति होती प्रखर...

सनम्र सत्यग्राही उदारभाव से...कल्पना शक्ति होती प्रखर...

मनन-स्मरण-संज्ञा व तर्क से...कल्पना शक्ति होती प्रखर...

प्रतिभा-बुद्धि-मेधा-प्रज्ञा से...कल्पना शक्ति होती प्रखर...(2)...

बिना कारण से भी प्रतिभा से...प्रतिभास होता है ज्ञान...

प्रज्ञा अतीत को परिज्ञान करती...मेधा त्रिकाल के परिज्ञान...

मतिज्ञान से परे होता श्रुतज्ञान...जो आत्मानुभव ज्ञान है...

इसी से होता है विशेष ज्ञान...जो मूर्तिक-अमूर्तिक भी ज्ञान है...(3)...

ज्ञानावरणीय कर्म का जब...होता विशेष क्षयोपशम...

तब अनुभव ज्ञान होता है जो...होता अभूतपूर्व ज्ञान...

इन सब कारणों से व इनसे परे...जिससे होता विशेष काम...

अज्ञात विषयों के बारे में भी...विचार करता कल्पना ज्ञान...(4)...

रचनात्मकता या सृजनात्मकता...आती है इस कल्पना से...

नवीन कला व नृत्य संगीत...चित्र व मूर्ति भी बने इससे...

कविता रचना या साहित्य लिखना...कल्पना शक्ति से होता संभव...

शोध-बोध-आविष्कार-निर्माण...कल्पना शक्ति से होता संभव...(5)...

कल्पना से ही भावी-प्रतिभास...जिससे होता आत्मविश्वास...

जिससे ज्ञान सही सुदृढ़ होता...कार्य करने का होता साहस...

इसी से ही मुमुक्षु सम्यग्दृष्टि...मोक्ष प्राप्ति हेतु करते प्रयत्न...

चक्रवर्ती का भी वैभव त्यागकर...आत्म साधना से पाते मोक्ष धाम...(6)...

यह ही सर्वोत्तम उदाहरण...अन्य सभी तो होते हैं सामान्य...
 अमूर्तिक व अपूर्व मोक्ष हेतु...कल्पना/(भावना) करते सुदृष्टि जीव...
 ऐसी होती है सम्यक् कल्पना...जिससे होता है सर्वोदय...
 त्यागकर के संकीर्ण कल्पना...'कनक' करे कल्पना-सर्वोदय...(7)...

नन्दौड़, दिनांक 20.11.2015, रात्रि 11.30
 (यह कविता वैज्ञानिक साहित्य व चैनलों से भी प्रभावित)

(मेरी आध्यात्मिक अनुभव संबंधी कविता)

मैं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या देखता हूँ?!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., क्या मिलिये ऐसे लोगों से.....)

आध्यात्मिक दृष्टि से जब मैं देखता हूँ संसार को।

सिद्ध स्वरूप/(चिन्मय रूप) देखता हूँ संसार के हर जीव को॥ (धृ.)

इसी दृष्टि से कोई न छोटा-कोई न बड़ा होता है।

कोई न उच्च कोई न नीच, भेद-भाव कुछ न होता है॥

कोई न पशु-कोई न नारकी, कोई न देव होता है।

कोई न मनुष्य कोई न स्त्री, कोई न नपुंसक होता है॥ (1)

कोई न धनी कोई न निर्धनी, कोई न भिखारी होता है।

कोई न शत्रु कोई न मित्र, अपना-पराया न कोई होता है॥

जो कोई शरीर-इन्द्रिय-मन को, अपना/(मैं) स्वरूप मानता है।

उसकी प्रज्ञा-श्रद्धा को मैं, अंध श्रद्धादि रूप/(अहंकार रूप) मानता हूँ॥ (2)

सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि डिग्री को, मेरी है ऐसा जो मानता है।

उसकी ऐसी परिणति को मैं, ममकार रूप/(मोह रागरूप) मानता हूँ॥

धर्म जाति राष्ट्र भाषादि के कारण, अन्य से जो वैरत्व करते।

ऐसे भाव-व्यवहार को मैं, राग-द्वेष-मोह रूप मानता हूँ॥ (3)

समता शांति आत्मविशुद्धि बिना, जो स्वयं को धार्मिक मानता है।

उसके ऐसे भाव को मैं अज्ञान, मोहाच्छन्न रूप से मानता हूँ॥

जन्म-मरण सांसारिक सुख-दुःखादि को मैं विभावमय देखता हूँ।

यथा आकाश के बादल-रंगादि को मैं, भौतिकमय जानता हूँ।। (4)

सच्चिदानंद-सत्य-शिव-सुंदरमय, हर जीव को मैं मानता हूँ।

ऐसा स्वरूप हर जीव प्राप्त करे, ऐसी भावना में ('कनक') भाता हूँ।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 20.11.2015, प्रातः 7.00

संदर्भ-

जीव का अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।

विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।। 13

मार्गणागुणस्थानैः चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात्।

विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाःखलु शुद्धनयात्।।

Again, according to impure (Vyavahara) Naya, Samsari Jivas are of fourteen kinds according to Margana and Gunasthana. But according to pure Naya, all jivas should be understood to pure.

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणा स्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से तो सब संसारी जीव शुद्ध ही है।

शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध जीव तो शुद्ध है ही परन्तु संसारी जीव भी शुद्ध है क्योंकि शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय केवल शुद्ध द्रव्य का ही ग्रहण करता है पर मिश्र अवस्थाओं को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि इस नय का प्रतिपादित विषय शुद्ध द्रव्य ही होता है। अशुद्ध नय अर्थात् व्यवहार नय से संसारी जीव कर्म से संयुक्त हैं। इस अवस्था में जीव के अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं क्योंकि संसारी जीव अनंतानंत है और कर्म भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इस अपेक्षा से संसारी जीव के भी संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं तथापि समझने के लिए एवं समझाने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली को अपनाकर उसमें समस्त भेद-प्रभेदों को गर्भित किया जाता है। इस गाथा में आचार्यश्री ने संसारी जीवों के वर्गीकरण को मुख्य दो भेदों में किया है। (1) मार्गणा स्थान (2) गुणस्थान। मार्गणा स्थान के पुनः 14 अंतर्भेद हो जाते हैं और उस अंतर्भेद में भी अनेक प्रभेद होते हैं। इसी प्रकार गुणस्थान के 14 भेद होते हैं उन 14 भेद के भी अनेक प्रभेद हो जाते हैं।

1. मार्गणा-

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तथा दिट्ठा।

ताओ चोद्दस जाणे सुण्णाणे मग्गणा होंति।। (141) गोम्मट्टसार जीवकाण्ड

जीव जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में खोजे जाते हैं-अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवों का अन्वेषण करने वाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञान में चौदह कही गयी हैं।

यथार्थ ज्ञान=अज्ञान-निवृत्ति, हित-प्राप्ति, अहित परिहार

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

हित की प्राप्ति अहित-परिहार, जिससे होता वह यथार्थ/(सम्यक्) ज्ञान।

अन्य सभी तो जानकारी मात्र है, लौकिक हो या धार्मिक/(आध्यात्मिक) ज्ञान।। (धृ.)

यथा प्रकाश से अंधेरा दूर होता, नवीन अंधेरा भी न होता प्रवेश।

दृश्यमान पदार्थ भी दिखायी देता, ग्राह्य प्राप्त, अग्राह्य होता परिहार।।

तथाहि जब होता यथार्थ ज्ञान, अज्ञान-अंधकार भी होता दूर।

हित-अहित का होता परिज्ञान, हित ग्राह्य होता अहित परिहार।।

यथार्थ ज्ञान होता आत्मश्रद्धा से, यथार्थ स्वरूपमय आत्मविश्वास से।

सच्चिदानंदमय होता आत्मा, इससे भिन्न सभी होते अनात्मा।।

राग द्वेष मोह काम क्रोधादि सभी, सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री।

शत्रु-मित्र अपना-पराया आदि, तन-मन-इन्द्रिय विकार बुद्धि।।

ये सब अनात्मा (अतः) होते अहित, इसके परिहार से होता आत्महित।

सच्चिदानंदमय आत्महित, इसके ग्रहण में होता आत्महित।।

यह परम आध्यात्मिक ज्ञान स्वरूप, व्यवहार-गौण में होता प्रवृत्त।

हिंसा-झूठ-कुशील-चोरी परिग्रह, फैशन-व्यसनो से होता निवृत्त।।

अन्याय-अत्याचार-शोषण-मिलावट, दूर होता भ्रष्टाचार आतंकवाद।

निन्दा-चुगली-अपमान-वैरत्व, त्याग होता ईर्ष्या घृणा तृष्णा विवाद।।

न्याय (नीति) सदाचारादि होता ग्रहण, सादा जीवन उच्च विचार उदारमन।

समता शांति का होता ग्रहण, ये सब (होते) यथार्थ से सम्यग्ज्ञान।।

अन्यथा ज्ञान न होता यथार्थ ज्ञान, जानकारी मात्र या दिखावा ज्ञान।
ज्ञान का फल होता सदाचरण, 'कनक' का लक्ष्य पूर्ण आत्म-विज्ञान।।

नन्दौड़, दिनांक 21.11.2015, रात्रि 10.00

संदर्भ-

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।। 'परीक्षामुख' (2)

जिससे हित की प्राप्ति अहित का परिहार होता है वह प्रमाण है जो कि सम्यग्ज्ञान स्वरूप है।

अज्ञान निवृत्तिहानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। (प.मुख सूत्र 1 अध्याय 5)

अज्ञान की निवृत्ति अहित का त्याग, हित की प्राप्ति, वीतराग स्वरूप निरपेक्षरूप समता भाव यह सम्यग्ज्ञान का फल है।

जेण तच्च विबुज्जेज्ज जेण चित्तं णिरुज्जदि।

जेण अत्ता विसुज्जेज्ज तं णाणं जिण सासणे।।267।। (मूलाचार)

जिससे तत्त्व का बोध होता है जिससे मन का निरोध होता है, जिससे आत्मा शुद्ध होती है जिनशासन में उसका नाम ज्ञान है।

जिसके द्वारा वस्तु का यथार्थ स्वरूप जाना जाता है, जिसके द्वारा मन का व्यापार रोका जाता है अर्थात् मन अपने वश में किया जाता है और जिसके द्वारा आत्मा शुद्ध हो जाती है, जीव वीतराग हो जाता है, वह ज्ञान जिनशासन में प्रमाण है, अर्थात् वही ज्ञान मोक्ष को प्राप्त कराने के लिए उपाय भूत है। वह ज्ञान संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय और अकिंचित्कर से रहित है।

जेण रागा विरजेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।

जेण मित्तीं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।269।।

जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को भावित करता है जिनशासन में वह ज्ञान कहा गया है।

जिसके द्वारा जीव राग-स्नेह से और काम-क्रोध आदि से विरक्त होता है-पराङ्मुख होता है, और जिसके द्वारा मोक्ष में अनुरक्त होता है, जिसके द्वारा मैत्री भावना अर्थात् द्वेष का अभाव करता है, जिनशासन में वही ज्ञान है। तात्पर्य यह हुआ।

अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि, अदेव में देवता का अभिप्राय, जो आगम नहीं है उनमें आगम की बुद्धि, अचारित्र में चारित्र की बुद्धि और अनेकान्त में एकान्त की बुद्धि जहाँ

तक है वहाँ तक अज्ञान है।

णाणी गच्छदि णाणी वंचदि णाणी णवं च णादियदि।

णाणेण कुणदि चरणं तह्या णाणे हवे विणओ॥1588॥

ज्ञानी जानता है, ज्ञानी छोड़ता है और ज्ञानी नवीन कर्म को नहीं ग्रहण करता है, ज्ञान से चारित्र का पालन करता है इसलिये ज्ञान में विनय होवे।

**यस्माज्ज्ञानी गच्छति मोक्षं जानाति वा गतेर्ज्ञानगमन प्राप्त्यर्थकत्वात्,
यस्यमाच्च ज्ञानी वंचति परिहरति पापं यस्माच्च ज्ञानी नवं कर्म नाददाति न
वध्यते कर्मभिरिति यस्माच्च ज्ञानेन करोति चरणं चारित्रं तस्माच्च ज्ञाने भवति
विनयः कर्तव्य इति।**

जिसे हेतु से ज्ञानी मोक्ष को प्राप्त करता है अथवा जानता है। गति अर्थ वाले धातु ज्ञान, गमन और प्राप्ति अर्थ वाले होते हैं ऐसा व्याकरण का नियम है। अतः यहाँ गच्छति का जानना और प्राप्त करना अर्थ किया है। जिससे ज्ञानी पाप की वंचना-परिहार करता है और नवीन कर्मों से नहीं बँधता है तथा ज्ञान से चारित्र को धारण करता है इसीलिये ज्ञान में विनय करना चाहिए।

णाणं सिक्खदि णाणं गुणेदि णाणं परस्स उवदिसदि।

णाणेण कुणदि णाणं णाणं णाणविणीदो हवदि एसो॥1368॥ (मूलाचार)

ज्ञान शिक्षित करता है, ज्ञान गुणी बनाता है, ज्ञान पर को उपदेश देता है, ज्ञान से न्याय किया जाता है। इस प्रकार यह जो करता है वह ज्ञान से विनयी होता है।

ज्ञान विद्या को प्राप्त कराता है। ज्ञान अवगुण को गुण रूप से परिवर्तित करता है। ज्ञान पर को उपदेश का प्रतिपादन करता है। ज्ञान से न्याय-सत्प्रवृत्ति करता है जो ऐसा करता है वह ज्ञान विनीत होता है।

न हि सम्यग्व्यपदेशं चरित्रमज्ञान पूर्वकं लभते।

ज्ञानान्तरमुक्तं चारित्राराधनं तस्मात्॥138॥ पुरुषार्थ सिद्धयुपाय

अज्ञानपूर्वक चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं होता है। इसलिये सम्यग्ज्ञान के अनन्तर चारित्राराधना का कथन किया गया है।

“नाणम्मि असंतंमि चरित्तं वि न विज्जए” व्यवहार भाष्य 1/2/711

जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ चारित्र भी नहीं रहता।

“सव्व जगुज्जोयकरं नाणं, नाणेण नज्जए चरणं।” व्यवहार भाष्य 7/21611

ज्ञान विश्व के समस्त रहस्यों को प्रकाशित करने वाला है। ज्ञान से ही मनुष्य को कर्तव्य का बोध होता है।

“सुयस्स आराहणयाए णं अन्नाणं खवेई।” उत्तराध्ययन 29/59

ज्ञान की आराधना करने से आत्मा अज्ञान का नाश करती है।

विन्नाणेणं समागम्म धम्मसाहणमिच्छिउं। उत्तराध्ययन 23/31

विज्ञान के द्वारा धर्म के साधनों का उचित निर्णय करना चाहिए।

पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।

अन्नाणी किं काही किंवा वाहिइ छेय पावगं।। दशवैकालिक 4/10

पहले सम्यग्ज्ञान होना चाहिए उसके उपरान्त सम्यग्ज्ञान के अनुसार दया पालन करना चाहिए अर्थात् सम्यक्चारित्र पालन करना चाहिए। इसी प्रकार चारित्र संपूर्ण संयमियों को आचरण करने योग्य है। अज्ञानी क्या कभी इस प्रकार श्रेय (आचरणीय) पापात्मक अश्रेय को जान सकता है अर्थात् बिना ज्ञान करणीय-अकरणीय का विवेक नहीं होने से अज्ञानी यथार्थ चारित्र पालन नहीं कर सकता है। इसलिये कहा है-

“बिन जाननते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये।”

सम्यग्ज्ञान की महानता का वर्णन करते हुए अमृत कलश में बताते हैं कि-

भेद विज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।

तस्यैवाभावतो बद्धा-बद्धा ये किल केचन।।7।।

जो अनन्तानंत सिद्ध हुए हैं वे सब भेद विज्ञान से सिद्ध हुए हैं। जो बंधे हुए हैं वे भेद विज्ञान के अभाव के कारण बंधे हुए हैं। इसलिये कविवर दौलतराम जी ने छहदाला में कहा है-

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।

इहि परमामृत जन्म जरा मृत्यु रोग निवारण।। चतुर्थदाल।।4।।

मैं न निंद्य बनूँ न निन्दा करूँ

(गुणी व गुण प्रशंसक मैं बनूँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : छोटी-छोटी गैया.....)

निंद्य न बनूँगा निन्दा न करूँगा, बनूँगा सुगुणी व गुणग्राही।

मेरा स्वभाव तो सच्चिदानंदमय, निर्मल निर्विकार समतामय।। (1)

सभी के गुण-दोष जानते तीर्थकर, तथापि पापी से भी न करते घृणा।

किसी की भी निन्दा अपमान न करते, नहीं करते द्वेष न करते हत्या।। (2)

हर जीव (के) कल्याण हेतु करते उपदेश, दोष दूर हेतु भी करते (है) निर्देश।
पाप व पापी को भी जानते पूर्णतः, रहते वीतरागी व शांत निर्लिप्त।। (3)

ऐसा ही अन्य सभी धार्मिक भी करते, गणधर से लेकर श्रमण तक।
सुदृष्टि से लेकर श्रावक व सज्जन (तक), स्व-भूमिका अनुसार यथायोग्य।। (4)

सम्यग्दृष्टि के होते हैं अनेक गुण, दोष ढाँकना होता है उपगूहन।
दोष दूर करना होता है स्थितिकरण, वात्सल्य होता है प्रभावना अंग।। (5)

इसके बिना कोई न होता है धार्मिक, न धर्म होता है धार्मिक बिना।
गुणों का समूह ही होता है गुणी, गुणों से रहित होता है दुर्गुणी।। (6)

सद्वृत्तों का होता गुण कथन, मनन-चिन्तन व पूजन वंदन।
आरती-प्रार्थना स्तुति अर्चना, वंदे तद्गुणलब्धये आराधना।। (7)

इसी से प्रमुदित होता है मन, गुण गुणी में प्रमुदित मन।
जिससे पाप कर्म होता निवारण, सातिशय पुण्य का (भी) होता बंधन।। (8)

दोष कथन में होता मौन धारण, अपरश्रावी यह गुण महान्।
इसी में समाहित क्षमा सहिष्णु गुण, ईर्ष्या द्वेष घृणा भाव शून्य।। (9)

गुप्त रहस्यों का नहीं कथन गुण, सत्यव्रत व भाषा समिति गुण।
वचन गुप्ति हित मित प्रिय वचन, अद्वेषकारी व अकलह वचन।। (10)

निंदा/(दोष कथन) से होता उक्त गुणों का नाश, पृष्ट माँस भक्षण का लगता दोष।
गुणनाश से होता धर्म विनाश, मिथ्यात्व और पापों का होता प्रवेश।। (11)

निंदा (फल) से श्रीपाल बना कुष्ठ रोगी, अपमानित हुई अंजना सुंदरी।
जलकर मरे (भी) साठ सहस्र पापी, होते हैं निन्दित व रोगी।। (12)

अतएव निन्दा मैं किसी की न करूँ, दोष दूर हेतु ही कथन करूँ।
वात्सल्य से योग्यजन को कहूँ, स्व-परहित 'कनक' मैं चाहूँ।। (13)

नन्दौड़, दिनांक 08.11.2015, रात्रि 9.18
(यह कविता विजयलक्ष्मी के कारण बनी।)

दोष कथक जिनधर्मी नहीं-

आयरियाणं वीसत्थदाए भिक्खु कहेदि सगदोसे।

कोई पुण णिद्धम्मो अण्णेसिं कहेदि ते दोसे।। (490) भ.आ.

भिक्षु विश्वासपूर्वक अपने दोषों को आचार्यों से कहता है। कोई आचार्य जो जिन भगवान् के द्वारा कहे गये धर्म से भ्रष्ट होता है वह भिक्षु के द्वारा आलोचित दोषों को दूसरों से कह देता है कि इसने यह अपराध किया है अर्थात् ऐसा करने वाला आचार्य जिनधर्म से बाह्य होता है।

दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना-

तेणं रहस्सं भिदंतएण साधु तदो य परिचत्तो।

अप्पा गणो य संघो मिच्छत्ताराधणा चेव।। (491)

उस आलोचित दोष को प्रकट करने वाले आचार्य ने ऐसा करके उस साधु का ही त्याग कर दिया। क्योंकि उसने अपने चित्त में यह विचार नहीं किया कि मेरे द्वारा इसके दोष प्रकट कर देने पर वह लज्जित होकर दुःखी होगा अथवा आत्मघात कर लेगा, या क्रुद्ध होकर रत्नत्रय को ही छोड़ देगा तथा उस आचार्य ने अपनी आत्मा का त्याग किया, गण का त्याग किया, संघ का त्याग किया। इतना ही नहीं उसके मिथ्यात्व की आराधना का दोष भी होता है।

दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना क्यों?

जदि धरिसणमेरिसयं करेदि सिस्सस्स चेव आयरिओ।

धिद्धि अपुट्ठधम्मो समणोत्ति भणेज्ज मिच्छजणो।। (496)

यदि आचार्य अपने शिष्यों को ही इस प्रकार दोष प्रकट करके दोषी करते हैं तो इन अपुष्ट धर्म वाले श्रमणों को धिक्कार है ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहेंगे।

इच्चेवमादिदोसा ण होंति गुरुणो रहस्सधारिस्स।

पुट्ठेव अपुट्ठे वा अपरिस्साइस्स धीरस्स।। (497)

जो आचार्य पूछने पर अथवा बिना पूछे शिष्य के द्वारा प्रकट किये दोषों को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य गुप्त रखने वाला अपरिश्रावी होता है और उसे ऊपर कहे दोष जरा भी नहीं छूते।

मैं प्रशंसनीय गुणी बनूँ व गुण-गुणी की प्रशंसा करूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., छोटी-छोटी गैया.....)

प्रशंसनीय गुणी मैं भी बनूँ, गुण गुणी की प्रशंसा भी करूँ।

वात्सल्य प्रमोद भाव मैं धरूँ, स्वयं को प्रसन्न व अन्य को करूँ॥
 धर्म में इसे कहते अनुमोदना, गुणानुराग स्तुति (प्रार्थना) वंदना।
 पूजा आरती या अर्चना सम्मान, विनय बहुमान गुण कीर्तन॥
 पूजनीय प्रति होती प्रार्थना वंदना, पूजा आरती या स्तुति अर्चना।
 अन्य गुणी सत्कर्म प्रति होती प्रशंसा, सभी सत्कर्म में अनुमोदना॥

श्लोक- स्तुतिः पुण्य गुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्न धीः।

निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम्॥ (सहस्रनाम)

स्तुति होती है पुण्य गुणों की कीर्ति स्तोता होता है भव्य प्रसन्न बुद्धि।
 निष्ठितार्थ पूज्य होते हैं स्तुत्य फल मिलता है नैश्रेयस सुख॥

श्लोक- उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।

भक्तेः सुन्दर रूपं स्तवनात्कीर्तिं स्तपोनिधिषु॥ (25 रत्नक)

उच्चगोत्र मिले प्रणाम करने से भोग मिले है दान देने से।

पूजा होती है उपासना से सुंदर रूप भी मिले भक्ति से॥

कीर्ति मिलती है स्तवन करने से, तीर्थकर प्रकृति बंधे वैयावृत्ति से।

ये सब फल मिले (हैं) गुरु भक्ति से, गुण प्रशंसा व अनुमोदना से॥

आहारदाता को जो फल मिलता, प्रशंसाकर्ता को भी (वह) फल मिलता।

आदिनाथ भगवान् के उदाहरण ज्ञेय, श्रेयांस-भरत के दृष्टान्त ज्ञेय॥

अन्य गुण गुणी व सत्कर्मकर्ता की, प्रशंसा अनुमोदना करने की।

होते हैं लाभ स्व-पर अन्य के, प्रोत्साहन तथा प्रेरित होने के॥

प्रोत्साहनकर्ता भी बनते प्रसन्न, प्रफुल्लित होते तन व मन।

उन्हें भी मिलता है आदर सम्मान, सेवा सहयोग एकता बहुमान॥

प्रशंसनीय के भी बढे (हैं) आत्मविश्वास, नेगेटिव थिंकिंग का होता है नाश।

प्रेरित व प्रोत्साहित भी वे होते, उत्तम कार्य हेतु प्रयास करते॥

तनाव भय से भी (वे) निवृत्त होते, सुखद अनुभव से समृद्ध होते।

कृतज्ञ व सहयोगी भी बनते, वैर-विरोध व ईर्ष्या भी त्यागते॥

इत्यादि होते हैं अनेक लाभ, इसलिए मैं करता हूँ सही तरीफ।

आशीर्वाद पुरस्कार भी मैं देता, 'कनकनन्दी' को गुणी/(गुण) ही भाता॥

रायचन्द व चापलूस नहीं बनूँगा, हतोत्साहित भी नहीं करूँगा।
ठगना व प्रलोभन नहीं करूँगा, सच्चे-अच्छे प्रामाणिक बनूँगा।।

नन्दौड़, दिनांक 09.11.2015, रात्रि 8.27 व 10.10
(यह कविता नितिन भाई सीपुर वालों के कारण बनी।)

अज्ञानी-मोही के विपरीत भाव व व्यवहार

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : भातुकली....., छोटी-छोटी गैया.....)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध से, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा व अहंकार से।

जीव न जानते सत्य-तथ्य, हिताहित विवेक से होते रिक्त।।

सत्य को असत्य माने जाने जीव, हित को अहित माने वे जीव।

मद्यपी से भी होते अधिक मोहित, अंधे से भी अधिक विवेक रहित।।

सत्ता-संपत्ति को अपना मानते, भोगोपभोगों में होते आसक्त।

फैशन-व्यसनो में होते मस्त, पर अहित में लगाते चित्त।।

गुण व गुणी की न प्रशंसा करते, अन्य की प्रशंसा से घृणा करते।

अन्य की निन्दा से प्रसन्न वे होते, अन्य के दुःख से खुश वे होते।।

अन्य की प्रगति से जलते रहते, अन्य को छोटा कर बड़ा बनते।

अन्य की निन्दा से महान् बनते, अन्य के नाश से स्व-विकास मानते।।

विघ्नसंतोषी व छिद्रान्वेषी होते, परसुखकातर व कृतघ्नी होते।

स्व-दोष व कमी को नहीं जानते/(मानते), स्व-दोष कमी को सही मानते/(जानते)।।

संकीर्ण कट्टर जो धार्मिक होते, धन-जन-मान से संयुक्त होते।

ख्याति-पूजा-लाभ में (जो) आसक्त होते, बुद्धिजीवी में उक्त कुगुण (अधिक) होते।।

सरल-सहज भोला-भाला जो होते, श्रद्धा-प्रज्ञा से जो संयुक्त होते।

स्व-परहितकारी (जो) गुणज्ञ होते, उक्त कुगुण से वे बचते रहते।।

स्व-पर सुख हेतु सुगुण ग्राह्य, स्व-पर दुःख हेतु कुगुण त्याज्य।

सुगुणों से ही मिलता है मोक्ष, 'कनक' अतएव सुगुणों में आसक्त।।

नन्दौड़, दिनांक 09.11.2015, प्रातः 8.18

महान् बनने के सूत्र

मूल सृजेता-आ. कनकनन्दी
रूपान्तर-श्रमण सुविज्ञसागर

(चाल : इन्साफ की डगर पे.....)

सतत सत्य पथ पे...दृढ़ता से (जो) आगे बढ़ते...

संसार के मध्य में...वे ही महान् बनते...(ध्रुव)...

यदि विघ्न-बाधा आवे...अपमान भी हो जाए...

तथापि आगे बढ़ते...बनते वे ही महान्...

आत्मविश्वास रखकर...बनते प्रगतिशील...सतत...(1)...

क्रोध मान माया लोभ...काम से न होते विचलित...

मोहासक्त न होते...सतपथ पे दृढ़ चित्त...

विवेकवान् बनकर...सदाचार में प्रवृत्त...सतत...(2)...

तीर्थकर बुद्ध ऋषि...मुनि पाण्डव राम...

दार्शनिक-वैज्ञानिक...अब्राहम लिंकन...

गाँधी सुभाष मदन...टेरेसा नाइटेंगल...सतत...(3)...

अपेक्षा व उपेक्षा...प्रतीक्षा से रहित...

निर्भय व साम्यभावी...होते जो अप्रभावी...

सतत पुरुषार्थ करके...'सुविज्ञ' जन बढ़ते...सतत...(4)...

पक्षपात से रहित...होते जो धैर्यशाली...

विफलताओं से भी...जो शिक्षा लेते भारी...

वे ही महान् बनते...कहते 'कनक' गुरुवर...सतत...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 05.11.2015, रात्रि 10.15

मुझे 'मैं' मिल गया है!

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(लय : तुम जो मिल गये हो.....)

मुझे 'मैं' मिल गया है\$\$\$ तो ये लगता है\$\$\$ आतमा..मिल गया\$\$\$

इक भटके हुए प्राणी को\$\$\$ स्वातमा..मिल गया\$\$\$ मुझे 'मैं'...(ध्रुव)...

अनादि काल से 'मैं' ...मोहपाश में बंधा...
राग-द्वेष में था झूला...कर्मों से था बंधा...2...
जन्म-मरण किया 'मैं'...अनंत काल...
गुरु देशना को पाकर...महा लक्ष्य..मिल गया...स्वातमा...(1)...

पुण्य से 'मैं' मिला हूँ...इसका करूँ मनन...
'मैं' मुझसे ना हो दूर...ऐसा करूँ यतन...2...
सतत अनुभव से...आत्म रमण...

अनंत कालनन्तर...स्व से 'मैं' मिल गया...स्वातमा...(2)...

'मैं' को 'मैं' के द्वारा... 'मैं' में ही 'मैं' रमूँ...
अभिन्न षट् कारक से...सत्य रूप 'मैं' धरूँ...2...
हे! निज द्रव्य/(तत्त्व) मेरे...ज्ञान चेतन...
भव्य 'सुविज्ञ' जन को...कारवाँ मिल गया...स्वातमा...(3)...

नन्दौड़, दिनांक 05.11.2015, रात्रि 9.20

गुरुवर! मुझे 'मैं' का ज्ञान देना

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : हमको मन की शक्ति देना.....)

मुझको 'मैं' का ज्ञान देना 'मैं' को पा जाऊँ/(सकूँ)।

परोपकार से भी पहले आत्महित करूँ॥ धृ.

राग द्वेष काम क्रोध दूर कर सकूँ।

माया अहंकार से भी दूर रह सकूँ।

विभावों को दूर करके स्वभाव में रमूँ॥ परोपकार...(1)

अनादि काल से तो मैंने स्व को ना जाना।

अनंत शक्तिवान् आत्म-तत्त्व ना माना।

पर को ही अपना मान भ्रमता ही रहा॥ परोपकार...(2)

भाग्य मेरे उदय आये गुरु दर्श मिल गये।

हितोपदेशी गुरुदेव से देशना मिले।

उनके वात्सल्य भाव से दोष दूर करूँ॥ परोपकार...(3)

धर्म-दर्शन-विज्ञान को 'मैं' से ही जोड़े।
सात तत्त्व परिज्ञान से, (मेरे) भ्रमों को तोड़े।
मन के मेरे भ्रम मिटाकर ज्ञान दीप जले।। परोपकार...(4)

नन्दौड़, दिनांक 26.11.2015, रात्रि 7.50

आत्म सम्बोधन-1

(मेरी समता से यदि कोई स्वयं दुःखी-पापी हो तो मैं दोषी नहीं!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे.....)

जिया रे! तू आत्म कल्याण करोSSS

समता-शांति-निस्पृहता सेSSS आत्म विशुद्धि करोSSS(ध्रुव)...

राग-द्वेष-मोह-काम त्यागकरSSS समता भाव धरोSSS

ख्याति-पूजा-लाभ-तृष्णा त्यागकरSSS निस्पृह भाव धरोSSS

शान्ति से विशुद्धि करोSSS जिया रे...(1)...

इसी से तेरा होगा आत्म कल्याणSSS यह निश्चय करोSSS

अन्य सभी लंद-फंद त्यागकरSSS एकांत-मौन धरोSSS

'अहं' का ध्यान करोSSS जिया रे...(2)...

संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागकरSSS निर्विकल्प साधना करोSSS

आकर्षण-विकर्षण-विभाव त्यागकरSSS विराग भाव धरोSSS

सरल-सहज बनोSSS जिया रे...(3)...

अन्य की चिन्ता व निन्दा त्यजकरSSS आत्मा का ध्यान करोSSS

कौन क्या माने-कौन क्या करे/(कहे)SSS इस से परे चलोSSS

स्वयं में स्वयं को तुलोSSS जिया रे...(4)...

स्वयं का कर्ता-भोक्ता स्वयं तूSSS स्वयं का उद्धार करोSSS

अन्य के अयोग्य व्यवहार के कारणSSS तू न अयोग्य/(कुभावी) बनोSSS

'अहं' में ही 'अहं' को पा लोSSS जिया रे...(5)...

तथापि यदि कोई तुझे निमित्त करSSS बने पापी व दुःखीSSS

उससे न होगा तेरा आत्म पतनSSS नहीं होगा पाप बंधनSSS

आत्म विशुद्धि के कारणऽऽऽ जिया रे...(6)...

आध्यात्मसार यह कर्म सिद्धांतऽऽऽ यह अलौकिक रहस्यऽऽऽ
मोक्षमार्ग यह मोह क्षोभ रहितऽऽऽ परम सकारात्मक भाव/(सुनियोजित लापरवाह)ऽऽऽ
'कनक' का आत्म स्वभावऽऽऽ जिया रे...(7)...

नन्दौड़, दिनांक 25.11.2015, रात्रि 11.15
(यह कविता मुनि आध्यात्मनंदी के कारण बनी।)

जीवन्तु वा म्रियन्ता वा प्राणिनोऽमी स्वकर्मतः।

स्वं विशुद्ध मनोऽहिंसन् हिंसक पापभाग् भवेत्॥ (253)

शुद्ध मार्ग मतोद्योगः शुद्ध चेतो वचो वपुः।

शुद्धान्तरात्म संपन्नो हिंसकोऽपि न हिंसकः॥ (254) (यश. चम्पू)

ये प्राणी अपने-अपने कर्म के उदय से जीये या मरे, किन्तु जो मानव अपना मन विशुद्ध कषाय रहित करता है वह अहिंसक है जो और अपने मन को अशुद्ध कषाय युक्त करता है वह हिंसक और पापी है। जो शुद्ध मार्ग (सदाचार) में प्रयत्नशील है, जिसका मन, वचन व काय शुद्ध है एवं जिसकी अंतरात्मा शुद्ध (कषाय भाव से क्लुषित नहीं) है वह हिंसा करके भी हिंसक नहीं है।

सुखदुःखा विधातापि भवेत्पाप समाश्रयः।

पटो मध्य विनिक्षिप्तं वासः स्यान्मलिनं न किम्॥ (256)

चंचल मन वाला प्राणी दूसरों को सुख-दुःख न देता हुआ भी पाप बंध करने वाला हो जाता है। क्या कपड़े की मञ्जुषा में रखा हुआ वस्त्र मलिन नहीं होता? अर्थात् जैसे ही भोगों की ओर दौड़ता हुआ मन भी क्या अशुभ ध्यान के कारण मलिन होकर पाप बंध करने वाला नहीं होता है? अवश्य होता है।

पुण्यायापि भवेद् दुखं पापायापि भवेत्सुखम्।

स्वस्मिन्नन्यत्र वा नीतमचिन्नयं चित्त चेष्टितम्॥ (225)

स्वयं को व दूसरों को दुःख देने से भी पुण्य कर्म का बंध होता है और सुख देने से भी पाप कर्म का बंध होता है, क्योंकि मन की चेष्टाएँ चिंतवन के लिए अशक्य हैं। अभिप्राय यह है कि यदि तपश्चर्या व कष्ट सहन शुभ परिणामों से यथाविधि करे जाते हैं तो उससे पुण्य कर्म का बंध होता है परन्तु यदि अशुभ परिणामों से किये जाते हैं तो उनसे पाप बंध ही होगा। इसी तरह शुभ परिणामों से युक्त जीवों द्वारा दूसरों को दुःख से भी पुण्य बंध होता है, क्योंकि मन की चेष्टाएँ अचिन्त्य होती हैं।

बहिष्कार्यासमर्थोऽपि हृदि हृद्येव स संस्थिते।

परं पापं परं पुण्यं परमं च पदं भवेत्॥ (257)

शरीर आदि में हिंसा व परोपकार आदि अशुद्ध व शुद्ध कार्य करने में असमर्थ होने पर भी यदि चित्त, पाप में लीन रहता है तो (चित्त) वह अशुभ ध्यान द्वारा तीव्रतम पापबंध करता है।

समंतभद्राचार्य ने कहा भी है कि-

पापं ध्रुवं परे दुखात् पुण्यं च सुखतो यदि।

अचेतनाऽकषायौ च बध्येयातां निमित्ततः॥ (92) (आ.मी.) अ.9

कुछ लोगों की मान्यता है कि दूसरे प्राणी को दुःख देने से पाप बंध ही होता है और सुख देने से पुण्य बंध होता है। परन्तु उक्त मान्यता सही नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से तो विष और शस्त्रादि दूसरों को दुःख देने में निमित्त हैं उन्हें पाप बंध होना चाहिए एवं कषाय रहित वीतराग दूसरे को सुख देने में निमित्त है उसे पुण्य बंध का प्रसंग हो जायेगा तो मुक्ति संघटित नहीं होगी। लोक में ऑपरेशन करने वाला वैद्य भी बीमार को कष्ट देने में निमित्त है तो उसे भी पाप बंध का प्रसंग हो जायेगा।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात् पापं च सुखतो यदि।

वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्ततः॥ (93)

कुछ लोगों की मान्यता है कि अपने को दुःख देने से पुण्य बंध होता है और सुख देने से पाप बंध होता है। ऐसा मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से तो वीतराग विद्वान मुनि को भी पुण्य पाप कर्मों का बंध करने का प्रसंग हो जायेगा। क्योंकि वह तपश्चर्या द्वारा अपने को दुःखी व ज्ञानभ्यास द्वारा अपने को सुखी बनाता है तब मुक्ति किसे होगी।

विशुद्धि संक्लेशागं चेत स्वपरस्थं सुखाऽसुखं।

पुण्यपापास्रवो युक्तौ न चैद्व्यर्थं वार्हतः॥ (1)

पुण्य पाप बंध की व्यवस्था हमारे विशुद्ध व संक्लिष्ट परिणामों पर अवलम्बित है। इससे अपने लिए या दूसरों के लिए दिये हुए सुख व दुःख यदि क्रमशः शुभ परिणाम व अशुभ परिणामपूर्वक है तब पुण्य बंध और पाप बंध होता है। अर्थात् यदि हम दूसरे प्राणी को कषायवश दुःख देते हैं तो हमें पाप बंध ही होगा और यदि हम शुभ परिणामों से दूसरों को सुख देते हैं तो हमें पुण्य बंध ही होगा, यदि ऐसा नहीं है तो आपके मन में पुण्यास्रव और पापास्रव निष्फल है।

मेरी भावना व विपरीत जीव प्रति मंगल कामना

(सभी जीव सुखी व पावन बने ऐसी मेरी भावना के अनुसार यदि कोई न बने तो भी उसके प्रति कुभाव नहीं किन्तु मंगल भावना ही करूँ!)

—आचार्य कनकनन्दी

(चाल : कहाँ भी नहीं, यहाँ ही सही...सुख-दुःख व जन्म-मरण (बंगला)....., तेरे प्यार का आसरा....., सायोनारा....., यमुना किनारे.....)

सतत विश्व कल्याण की मैं करूँ भावना...उदार निःस्वार्थमय शुभ भावना...

सभी जीव सुखी बने, बने मोक्षगामी...पाप ताप त्यागकर बने धर्मप्रेमी...

हिंसा झूठ चोरी व कुशील परिग्रह...क्रोध मान माया लोभ भय व मोह...

ईर्ष्या द्वेष घृणा व निन्दा अपमान...त्यागकर बने सभी शांत-शालीन...

अन्याय अत्याचार शोषण मिलावट...जमाखोरी भ्रष्टाचार आतंकवाद...

फैशन-व्यवसन व दिखावा आडम्बर...त्यागकर सभी पाले पावन सदाचार...(1)...

संकीर्णता भेद-भाव वैर (व) विरोध...ऊँच-नीच तुच्छ भाव क्रूरता कुभाव...

समस्त विषमताएँ समस्या त्यागकर...सभी बने सत्यग्राही विनम्र उदार...

इसी हेतु भावना व मनन करता हूँ...लेखन प्रवचन ध्यान भी करता हूँ...

यदि कोई ऐसा बने प्रसन्न होता हूँ...अनुमोदना प्रशंसा व आशीर्वाद

/(सम्मान, पुरुस्कार) देता हूँ...(2)...

यदि कोई ऐसा सुभाव न करता...सद्व्यवहार उत्तम भावना न करता...

उससे भी मैं घृणा-द्वेष न करता...समता भाव से ही (उसका) मंगल चाहता...

सधर्मी-विधर्मी या स्वदेशी-विदेशी...किसी भी जाति पंथ मत भाषा-भाषी...

कीट-पतंग या पशु-पक्षी-मानव...सभी के प्रति ही ऐसा करता शुभ भाव...(3)...

अन्यथा संक्लेश ईर्ष्या द्वेष घृणा होते...भेदभाव पक्षपात वैर-विरोध होते...

अन्याय अत्याचार व विद्रोह होते...आक्रमण युद्ध आतंकवाद भी होते...

धर्म जाति पंथ मत भाषा राजनीति...काला गोरा व राष्ट्र विचार-धारा प्रभृति...

बलपूर्वक जब-जब थोपना होता है...रक्त-रंजित मानव तब-तब होता है...(4)...

तीर्थकर बुद्ध ईसा मसीह आदि...ऐसी दुष्प्रवृत्ति में न करते प्रवृत्ति...

ऐसी प्रवृत्ति से ही मिलती मुझे शांति...अतः ऐसी प्रवृत्ति करे 'कनकनन्दी'...

नन्दौड़, दिनांक 26.11.2015, रात्रि 7.47

(मेरी स्वयं की भावना के साथ-साथ विश्व के संकीर्ण-कट्टर-कूर-दंभी मानव की कुप्रवृत्ति से पीड़ित होकर, शिक्षा लेकर, दया से द्रवित होकर यह कविता बनी।)

सन्दर्भ-

विश्व के विविध जीवों के प्रति आत्मिक भावना-

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।

माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदाममात्मा विदधातु देव।। (1)

O lord! make myself that I may always have love for all beings, pleasure in the company of learned (good) men, unstinted sympathy for those in pain, and tolerance towards those perversely inclined.

भावार्थ-हे भगवान्! विश्व के सम्पूर्ण जीवों के प्रति मैत्री-भाव, गुणीजनों के प्रति प्रमोद भाव, दुःखी जीवों के प्रति कृपा-भाव, विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ भाव मेरा सदा हो।

प्राप्त शिक्षाएँ-स्व-पर-विश्व कल्याण के लिए हमें सतत उपर्युक्त भाव-व्यवहार करना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त केवल बाह्य शिक्षा-धर्म-संविधान-प्रवचन-चर्चा-कानून-विज्ञान-सत्ता-संपत्ति से भी स्व-पर-विश्व कल्याण संभव नहीं है। उपर्युक्त भाव-व्यवहार ही यथार्थ से शिक्षा-धर्म-संविधान-कानून-विज्ञान-आध्यात्मिक भावना आदि है। इससे ही सर्वोदय-साम्यवाद-विश्वमैत्री-विश्वशांति-निरस्त्रीकरण, पर्यावरण सुरक्षा, सर्वजीव अधिकार, मानवाधिकार संभव है। मैत्री भाव से प्रत्येक जीवों की रक्षा होती है, तो प्रमोद भाव से गुण ग्रहण होता है। कृपा भाव से दूसरों की सहायता होती है तथा माध्यस्थ भाव से वैर, विद्वेष, कलह, हत्या, आतंकवाद, युद्ध तक नहीं होता है।

आत्मदोषों को दूर करने के लिए प्रार्थना-

शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।

जिनेन्द्र! कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः।। (2)

May Thy grace enable me, Jinendra! to separate, like the sword-stick from its scabbard, the self, which is faultless and possessed of infinite powder from the body.

भावार्थ-हे भगवान्! आपके प्रसाद से मुझे इतनी शक्ति प्राप्त हो जिससे मैं मेरे अनंत शक्ति सम्पन्न आत्मा से दोषों को दूर करके शरीर से भी पृथक् करने के लिए

समर्थ बन्नूँ। जैसा कि तलवार को म्यान से पृथक् किया जाता है, वैसा ही मैं मेरे आत्मा को दोष एवं शरीर से पृथक् करूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ—भगवान् से सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-भोग-बाह्य शत्रु पर विजय प्राप्त करने की याचना करके याचक, भिखारी, दीन-हीन बन के संसार में चिर दुःखी बनने की प्रार्थना नहीं करना चाहिए अपितु स्वयं में निहित दोष, कमियाँ, अपराध, कर्म, अंतरंग शत्रु को दूर/परास्त करने के साथ-साथ स्व-शरीर को भी पृथक् करके स्व-आत्मा को पवित्र-निर्दोष-अनंत शक्ति-वैभव सम्पन्न बनाकर अनंत सुख-शांति के मालिक/प्रभु/स्वामी बनने की प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रत्येक जीव स्व-दोषों से ही दुःखी होते हैं तथा असफल होते हैं तथा दोष दूर करने से सुखी होते हैं, विकास करते हैं। जिस प्रकार विज्ञान के अनुसार $E=MC^2$ या परमाणु विघटन से ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जीव जब स्वदोष से स्वयं को पृथक् करता है तब स्व में निहित अनंत शक्तियों का उद्भव, प्रकटीकरण/विस्फोट होता है।

समस्त अनुकूल-प्रतिकूलताओं में साम्य भाव-

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वन वा।

निराकृताशेष ममत्वबुद्धेः, समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ।। (3)

O lord! may my mind, after a complete destruction of all sense of attachment, be always at equilibrium, in pleasure and pain, among friends and foes, in gain and loss, at home and forest.

भावार्थ—हे प्रभु! मेरा मन समस्त ममत्व बुद्धि (मोहासक्ति) से रहित होकर दुःख-सुख, शत्रु-मित्र, संयोग-वियोग, भवन-वन में सदा समता में रहे।

प्राप्त शिक्षाएँ—अनुकूलता-प्रतिकूलता, आकर्षण-विकर्षण, शत्रुता-मित्रता आदि में अप्रभावित होकर संतुलित-तटस्थ रहने से मन में भाव में तनाव-क्षोभ-चञ्चलता-अस्थिरता आदि दुःख कारक तत्त्व उत्पन्न नहीं होते हैं, पापकर्म का आस्रव-बंध नहीं होता। इससे व्यक्ति शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक दुःख, रोग, समस्या से मुक्त हो जाता है। इसके साथ-साथ व्यापक साम्यभाव से व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, वैश्विक समस्या-संघर्ष-युद्ध आदि समाप्त हो जायेंगे। ऐसा ही भाव-व्यवहार दैनिक चर्या, भोजन, जीवन चर्या, गृह, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में, प्रकृति आदि में संतुलन होना स्वास्थ्य, सुख-शांति, विकास, व्यवस्था आदि के कारण है।

आत्म सम्बोधन-11

(मैं (स्वयं) के द्वारा मैं (स्वयं) को समझूँ
किन्तु अन्य प्रति संक्लेश न करूँ!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्वयं को सही समझऽऽऽ

कौन क्या समझे...कौन क्या न समझेऽऽऽ इसका विकल्प त्यजऽऽऽ...(ध्रुव)...

सिद्धों को संसारी जीवऽऽऽ देख न पाते स्व-इन्द्रियों सेऽऽऽ
तथापि सिद्धों का अस्तित्वऽऽऽ न हो जाता अवास्तविकऽऽऽ
वे स्वयं में ही परिपूर्णऽऽऽ जिया रे...(1)...

अनादि काल से हर जीव मेंऽऽऽ अनंत कर्म आवृत्त हैंऽऽऽ
जिसके कारण हर जीव कीऽऽऽ होती अलग प्रवृत्ति हैऽऽऽ
यह शक्ति है कर्म कीऽऽऽ जिया रे...(2)...

सभी जीवों के भाव-व्यवहारऽऽऽ न होते एक समानऽऽऽ
हर जीव के भाव-व्यवहार भीऽऽऽ न होते सदा समानऽऽऽ
यह ही संसार स्वरूपऽऽऽ जिया रे...(3)...

अनंत जीव हैं अनंत भी कर्मऽऽऽ भाव भी होते तदनुकूलऽऽऽ
अनंत तीर्थकरों से भीऽऽऽ हुआ न सभी का उद्धारऽऽऽ
स्व का करो उद्धार अतःऽऽऽ जिया रे...(4)...

स्व-उद्धार तू पहिले करोऽऽऽ अन्य प्रति करो मंगल कामनाऽऽऽ
किन्तु अन्य हेतु न करोऽऽऽ स्वयं की ही आत्म विराधनाऽऽऽ
स्वयं को पावन बना रेऽऽऽ जिया रे...(5)...

तू तो चेतन अमूर्तिकमयऽऽऽ सच्चिदानंद तेरा रूपऽऽऽ
तेरे स्वरूप को मोही न जानेऽऽऽ उन्हें क्या देना उपदेशऽऽऽ
मोही का लक्ष्य अनात्म रेऽऽऽ/(तेरा लक्ष्य अध्यात्म रेऽऽऽ) जिया रे...(6)...

मोही तो अनात्म सत्ता-संपत्तिऽऽऽ प्रसिद्धि को माने अपनाऽऽऽ
तन-मन-इन्द्रिय राग-द्वेष-मोह कोऽऽऽ नहीं जानता/(मानता) है अनात्माऽऽऽ
उन्हें क्या तू देगा उपदेशऽऽऽ/(वे क्या जाने/(माने) तेरा उद्देश्यऽऽऽ) जिया रे...(7)...

स्व-प्रकाशी बनो सूर्य समऽऽऽ स्वयं ही फैले प्रकाशऽऽऽ
अन्य से अप्रभावी बनो सूर्य समऽऽऽ मोह क्षोभ शून्य साम्यऽऽऽ
साम्य ही तेरा स्वभावऽऽऽ/('कनक' का निज स्वभावऽऽऽ) जिया रे...(8)...

नन्दौड़, दिनांक 27.11.2015, रात्रि 12.00 व प्रातः 5.57

आत्मा का गुरु आत्मा

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभ्रष्टिज्ञापकत्वतः।

स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥ (34)

Because of its internal longing for the attainment of the highest ideal, because of its understanding of that ideal, and because of its engaging itself in the realisation of its ideal, because of these the soul is its own preceptor!

पुनः शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरुदेव! मोक्ष सुख अनुभव विषय में गुरु कौन है? गुरु कहते हैं-जो शिष्य निश्चय से सतत् कल्याण चाहते और उसके जिज्ञासा के अनुसार उपाय बताते हैं तथा जो अपर्वतमान है उन्हें पर्वतन करते हैं उन्हें निश्चय से गुरु कहते हैं। इसी प्रकार होने पर आत्मा का गुरु आत्मा ही है। क्योंकि स्वयं आत्मा स्व-मोक्ष सुख की अभिलाषा करता है अर्थात् मोक्ष सुख मुझे मिले ऐसे सत् प्रशंसनीय आकांक्षा को करता है। स्व-आत्मा स्वयं के लिए मोक्ष सुख की जिज्ञासा करता है, जिज्ञासित मोक्ष सुख का उपाय को आत्म-विषय में ज्ञापन देता है अर्थात् मोक्ष सुख का उपाय सेवन करो! ऐसे बोध देता है तथा मोक्ष सुखोपाय में स्वयं को नियुक्त करता है। इसी प्रकार सुदुर्लभ मोक्ष सुख उपाय में यह दुरात्म अभी तक प्रवृत्त नहीं हुआ है। ऐसे मोक्ष सुख में अपर्वतमान आत्मा को स्वयं आत्मा प्रवृत्तमान करता है इसलिए निश्चय से आत्मा का गुरु आत्मा ही है।

समीक्षा-यहाँ पर आचार्यश्री ने निश्चयनय से गुरु-शिष्य के बारे में संक्षिप्त सारगर्भित प्रकाश डाला है। व्यवहारनय से आचार्य-उपाध्याय-साधु गुरु होने पर भी निश्चयनय से आत्म कल्याण में प्रवर्तमान स्वयं ही स्वयं का गुरु है। क्योंकि भले गुरु हितमार्ग का उपदेश करता है, परन्तु प्रवृत्त तो होता है स्वयं जीव। स्वयं आचार्यश्री आगे इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे इसलिए यहाँ विशेष वर्णन नहीं कर रहा हूँ तथापि आचार्य अकलंक देव कृत स्वरूप सम्बोधन, से कुछ विषय उद्धृत कर रहा हूँ। यथा-

“इत्याद्यनेक, धर्मत्वं, बन्धमौक्षौ तयोः फलम्।

आत्मा स्वीकुरुते तत्तत्कारणोः स्वयमेव तु।।9।।”

कर्मबंध भवभ्रमण मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम से आस्रव बंध तत्त्व के रूप में होता है और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र द्वारा संवर निर्जरा की प्रक्रिया से मोक्ष होता है। आत्मा स्वयं विभिन्न कारणों से बंध या मोक्ष की प्रक्रिया किया करता है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।

स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।

वह आत्मा स्वयं अपने राग-द्वेष-मोह आदि भावों के द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय कर्मों का बंध किया करता है और जब कर्म का उदय होता है तो आत्मा स्वयं करके अच्छे या बुरे फल को भोगा करता है, चारों गतियों में जन्म-मरण भी यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार किया करता है तथा निर्बंध गुरु-द्वारा जिनवाणी सुनकर जब यह शरीर आत्मा के भेदभाव समझकर आत्म का श्रद्धालु बनता है, संसार शरीर और विषय-भोगों से विरक्त होता है-यह सम्यग्दृष्टि बनकर स्वयं कर्मों से मुक्त होने का मार्ग पर चल पड़ता है। अपनी आत्मचर्या सम्यक्चारित्र को उन्नत करता हुआ संवर निर्जरा की पद्धति से शुक्लध्यान द्वारा समस्त कर्मों से छूटकर, जन्म-मरण का सदा के लिए विनाश करके मुक्त भी अपने आप होता है। यानी-यह आत्मा स्वयं कर्ता, भोक्ता, भ्रमणकर्ता और मुक्त होता है।

कर्ता यः कर्मणा भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।

बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेवहि।।20।।

जीव को संसार में घुमाने वाला, उसको सुख-दुःख देने वाला तथा संसार और कर्मों से जीव को मुक्त करने वाला कोई व्यक्ति नहीं है, यह समस्त कार्य आत्मा स्वयं करता है। यह आत्मा स्वयं अपने मिथ्यात्व, राग-द्वेष-मोह, ममतादि भावों से शरीर, परिवार, धन, मकान आदि को अपना करके कर्मबंध किया करता है तथा कर्मों के उदय आने पर उन कर्मों का फल आत्मा को स्वयं भोगना पड़ता है। आत्मा तथा कर्म, नोकर्म (शरीर) का भेद-विज्ञान हो जाने पर सम्यक्त्व, सत्-ज्ञान स्वयं होता है तथा अंतरंग-बहिरंग तपश्चर्या द्वारा कर्मों से मुक्त भी आत्मा स्वयं होता है।

उसके संसार-भ्रमण तथा संसार छूटने में अन्य कोई सहायक नहीं होता। यह सभी सांसारिक पारमार्थिक आध्यात्मिक कार्य जीव अकेला ही करता है।

कार्य के लिए बाह्य कारण

नाज्ञो विज्ञत्व मायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।

निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेधर्मास्तिकायवत्॥ (35)

Those not get qualified for the acquisition of truth cannot become the knowers of truth; the knowers of truth cannot become devoid of it; external teachers are useful like eyther which is but helpful in the motion (of moving things).

“स्वाभाविक हि निष्पतौ, क्रियागुणमपेक्ष्यते।

न व्यापारशतेनापि-शुकवत्याठयते वकः॥”

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि यदि आत्मा का गुरु आत्मा ही है तब परंपरा गुरु से शिष्य कैसे शिक्षा प्राप्त करता है? मुमुक्षु के द्वारा धर्माचार्य की सेवा आदि भी नहीं होगी। इसका समाधान आचार्यश्री निम्न प्रकार करते हैं-

हे भद्र! तत्त्वज्ञान जो प्राप्त करने में अयोग्य जो अभव्य हैं वह हजारों धर्माचार्यों के उपदेश से भी प्राप्त नहीं कर पाते।

जिसमें जो स्वभाव है वह स्वभाव की ही अभिव्यक्ति बाह्य क्रिया-निमित्त से होती है परन्तु जिसमें जो स्वभाव नहीं है उसकी अभिव्यक्ति सैकड़ों क्रियाओं से भी नहीं हो सकती है। जैसे कि तोता को पढ़ाने से तोता पढ़ सकता है परन्तु बगुला नहीं पढ़ सकता है। उसी प्रकार जो अंतरंग में-विज्ञप्ति की शक्ति रखता है वहीं अभिव्यक्ति रूप से ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। परन्तु जिसमें यह शक्ति नहीं है वह हजारों से भी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है।

प्रशमयोगी उस वज्रपात से भी चलायमान नहीं होते हैं जिसके भय से पथिक पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और विश्व-ध्वनित हो जाता है। क्योंकि वह योगी बोध रूपी प्रदीप से मोहरूपी घना अंधकार को नष्ट करके सम्यग्दृष्टि को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे भयंकर वज्रपात से भी जो चलायमान नहीं होते हैं वे अन्य छोटे-छोटे उपद्रवों से कैसे चलायमान होंगे? कहने का तात्पर्य यह है कि वज्ररूपी बाह्य निमित्त से भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि महायोगी चलायमान नहीं होते हैं।

परन्तु बाह्य अपेक्षा की आवश्यकता होती है, ज्ञान-प्राप्ति के लिए गुरु आदि बाह्य निमित्त मात्र है और शिष्य की योग्यता अंतरंग मुख्य कारण है क्योंकि वही साक्षात् साधक है। इसके लिए उदाहरण है गति परिणत जीव, पुद्गल के लिए जिस प्रकार धर्मास्तिकाय निमित्त होता है।

समीक्षा-यह वर्णन आध्यात्मिक दृष्टि से होने के कारण गुरु रूपी निमित्त को ज्ञान प्राप्ति में उदासीन कारण बताया गया है। परन्तु गति के लिए धर्मास्तिकाय जिस प्रकार केवल उदासीन कारण है उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति में गुरु उदासीन कारण नहीं है। यदि ऐसा होता तो तीर्थंकर क्यों उपदेश करते। गणधर भी उपदेश क्यों सुनते? आचार्य भी ग्रंथ क्यों लिखते? बिना देशना-लब्धि सम्यक्दर्शन क्यों नहीं होता? यह सब होते हुए भी अयोग्य शिष्य को अपनी कमी को बताने के लिए, गुरु के अकर्तापन को जताने के लिए यह सब कहा गया है। नहीं तो गुरु शिष्य, गुरुकुल, ग्रंथ आदि की आवश्यकता क्यों होती।

ध्यान-योग्य, योग्यता एवं परिस्थिति

अभवच्चित्तविक्षेपः एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।

अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः॥ (36)

He in whose mind no disturbances occur and who is established in the knowledge of the self-such an ascetic should engage himself diligently in the contemplation of his soul, in a lonely place.

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है-हे गुरुदेव! अभ्यास क्यों करना चाहिए? अर्थात् शिष्य की जिज्ञासा यह है कि अभ्यास का प्रयोग उपाय क्या है? बार-बार सुप्रसिद्ध स्थान, नियम आदि में प्रवृत्त होना अभ्यास है। इस संवित्ति रूप जिज्ञासात्मक शंका का समाधान आचार्यश्री शिष्य के बोध के लिए करते हैं।

संयमी-योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकांत स्थान में तथा अंतरंग राग-द्वेषादि रहित एकांत-भाव से योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार की एकांत से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे आत्म-ध्यान नहीं हो पाता है।

चातुर्मास कर्त्ता परिवार एक-उपलब्धियाँ अनेक

(लघु ग्राम नन्दौड़ में स्थित केवल एक ही दि. जैन परिवार द्वारा
संपादित चातुर्मास की अनेक विध महान् उपलब्धियाँ)

-श्रवण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

लघु ग्राम नन्दौड़ में...हीरक चातुर्मास हुआ...

कनकनन्दी गुरुदेव...श्रीसंघ अभिभूत हुआ...(स्थायी)...

इसके पुण्यार्जन कर्ता...नन्दा देवी प्रवीण शाह...

चार वर्ष के अनुरोध अनंतर...दो हजार पंद्रह (2015) में मिला...

इसकी प्रभावना से प्रेरित हो...विहार एक माह रोक लिया...

दो हजार सत्रह से बावीस तक...चातुर्मास हेतु निवेदन किया...(1)...

इस हेतु आचार्यश्री ने...उन दोनों को नियम दिया...

पत्रिका-पण्डाल-बैण्डबाजा...बोली आदि नहीं करना...

सरल-सहज दिखावा रहित...स्वेच्छा प्रेरक कार्य करना...

निराडम्बर व निस्पृह...आदर्श चातुर्मास करना...(2)...

उक्त प्रतिज्ञा के पालन से...उपलब्धियाँ अनेक हुई...

आठ ग्रंथों का विमोचन...सात ग्रंथों की रचना हुई...

सत्य-साम्य-सुखामृतमय...आध्यात्मिक स्वाध्याय हुई...

परिणाम रूप भव्य जनों को...स्व (मैं) तत्त्व का बोध हुआ...(3)...

अतिशय रूप ग्राम नन्दौड़ में...तीन श्रावकों ने ब्रह्मचर्य लिया...

सप्तम प्रतिमा व्रत लेकर...आशा देवी खुशपाल धन्य किया...

जैन-जैनेत्तर भविक जनों ने...चौका लगाकर आहार दिया...

प्रतिदिन अञ्जल के लोगों ने...आहार सेवा दान दिया...(4)...

सम्मान समारोह पिच्छी परिवर्तन...उपाधि प्रशस्ति प्रदान...

प्रवीण चन्द्र वज्रजंघ श्रेयांस...नन्दा देवी अभिनव श्रीमती...

मनीष-नेहा-जिनेन्द्र-दृष्टि नवोदित...अभिनव श्रेयांस श्रीमती...

बाल अक्षत चयन नवोदित...अभिनव श्रेयांस कुमार भी...(5)...

नन्दौड़ ग्रामवासी सहज-सरल...संतों का करे विनय नमन...

उत्तम आहार-विहार व्यवस्था...प्राकृतिक छटा मन भावन...

तन-मन-अक्ष स्वास्थ्यप्रद...सब जन-गण-मन पावन...

'कनक' श्रीसंघ की शुभकामना...सर्वजीव पावे कल्याण...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 27.11.2015, रात्रि 10.32

परामनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक शोधपूर्ण कविता

सकारात्मक-वर्णन : धर्मग्रंथों में सर्वाधिक (भारतीय धर्मग्रंथों में वर्णित परम-सकारात्मकता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

धर्म में तो सकारात्मक वर्णन...ग्रंथों में सर्वाधिक पाया जाता है...

भले उसका सही परिज्ञान...सभी लोग नहीं कर पाते हैं...(स्थायी)...

आधुनिक विज्ञान से लेकर जो...मोटिवेशन/(मैनेजमेंट) में वर्णन है...

उससे भी अधिक वर्णन तो...धर्मग्रंथों में पाया जाता है...

धर्मग्रंथों में वर्णित है...सच्चिदानंदमय हर जीव है...

सत्य शिव सुंदर अनंत गुणमय...स्वयंभू स्वयंपूर्ण हर जीव है...(1)...

जो जीव स्वयं को ऐसा मानता...उसको होता है आत्मविश्वास...

उसका ज्ञान होता है सम्यग्ज्ञान...विचार होता है सकारात्मक...

ऐसा जीव नकारात्मक विचारों को...मानता है अनात्म रूप...

जिससे वह नकारात्मक...विचारों को त्यागने का करे यत्न...(2)...

क्रोध मान माया लोभ ईर्ष्या...द्वेष घृणा वैरत्व अपमान...

अंधश्रद्धा व अंधानुकरण...चिन्ता निन्दा अभिमान...

हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह...शोषण मिलावट भ्रष्टाचार...

वाद-विवाद व कलह-झगड़ा...अवसार व दुर्विचार...(3)...

आलस्य प्रमाद किंकर्तव्यमूढ़ता...लक्ष्यहीन व निरुद्देश्य...

फैशन-व्यसन-विलासिता आदि को...त्यागे नकारात्मक मानकर...

इन बस नकारात्मक भावों को...मानता है पाप स्वरूप...

जो आत्मा का पतन करे...वह है पाप स्वरूप...(4)...

जिससे आत्मा का होता विकास...उसे मानता है धर्म स्वरूप...

स्वर्ग से लेकर मोक्ष के...उपाय को मानता है धर्ममय...

आत्म विकास से विश्व कल्याण...तक मानता है धर्ममय...

आत्म शांति से विश्व शांति...तक मानता है धर्ममय...(5)...

मोक्ष से ही जीव बनता है...पूर्ण सच्चिदानंद स्वरूप...

अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय...शुद्ध बुद्ध शाश्वत रूप...

केवल भौतिक उपलब्धि हेतुक...नहीं है सकारात्मकता...

आत्मोपलब्धि के कारणभूत...विचार है परम सकारात्मकता...(6)...

ऐसे परम विचार सहित ही...होते हैं सच्चे धार्मिक...

ऐसे ही परम विचार/(लक्ष्य के कारण)...‘कनक’ बना है धार्मिक...(7)...

नन्दौड़, दिनांक 28.11.2015, रात्रि 10.29 व 11.41

नव कोटि से स्वात्म भावना ही सर्वोत्तम

(राग : तुम दिल की धड़कन.....)

उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा।

अधमा कामचिन्तास्यात्, परचिन्ताऽधमाधमा।। (परमानंद स्तोत्र)

हिन्दी- उत्तम स्वात्म चिन्ता है, मोह चिन्ता है मध्यमा।

अधमा काम चिन्ता है, पर चिन्ता अधमा-अधमा।।

अविद्याभिदुरं ज्योति, परं ज्ञानमयं महत्।

तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। (49) इष्टोपदेश

हिन्दी- अज्ञान नाशक ज्ञान प्रकाशक, आत्म ज्योति है अति महान्।

उसके लिए ही करो जिज्ञासा, उसे ही चाहो उसे ही पाओ।।

तद् ब्रूयात्तत्परान्मुच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।। इ.उ.पृ. 196

हिन्दी- उसे ही बोलो उसे ही पूछो, उसे ही चाहो उसे ही पाओ/(वैसे ही बनो)।

जिससे अज्ञान रूप को त्यागकर, विद्यामय रूप पाओ/(विद्यामय रूप बनो)।।

समीक्षा- आत्मचिन्ता है सबसे उत्तम, जिससे मोह का होता विनाश।

जिससे होता है आत्मविश्वास, ज्ञान चारित्र का भी होता विकास।।

इसे ही कहते हैं रत्नत्रय जो, मोक्ष के कारण महान्।

आत्मज्ञान व आत्मध्यान के माध्यम से मानव बनो है भगवान्।।

मोहचिन्ता को मध्यम कहा, मोह जानकर उसका त्याग।

बिन जानते दोष गुणन को, कैसे ग्रहण व कैसे हो त्याग।।

सभी संसारी जीव कर्माधीन व मुक्त ही स्वाधीन (आध्यात्मिक दृष्टि से पराधीन (दास, गुलाम))

-आ. कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., भातुकली....., तुम दिल की.....)

कर्माधीन जो जीव होते हैं वे सभी होते हैं पराधीन।

वृक्ष से लेकर चक्रवर्ती तक सभी होते हैं कर्माधीन॥ (स्थायी)

इसी दृष्टि से मालिक-मजदूर सभी होते हैं पराधीन।

राजा-प्रजा व सम्राट-दास सभी होते हैं गुलाम।

कर्माधीन सभी संसारी जीव, कर्म से होते हैं परिचालित।

जन्म-मरण रोग-भूख-प्यास से, होते हैं सभी पीड़ित॥ (1)

क्रोध-मान-माया-ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा से भी होते (वे) पीड़ित।

भय-मैथुन-परिग्रह-निद्रा से भी होते हैं प्रभावित।

इन सब कारणों से युक्त होने से, उन्हें न मिले परम शांति।

संकल्प-विकल्प-संक्लेश (के) कारण, नहीं मिलती है पूर्ण तृप्ति॥ (2)

जिसके कारण उन्हें क्षोभ होता, जिससे आकर्षण-विकर्षण होता।

जिससे द्वंद व संघर्ष (भी) होता, जिससे दुःख ही बढ़ता जाता।

आक्रमण युद्ध व हत्या करते, चोरी मिलावट शोषण भी।

फैशन-व्यसन व भ्रष्टाचार भी, करते अन्याय अत्याचार भी॥ (3)

इसलिए कर्माधीन संसारी नहीं, होते हैं पूर्ण स्वाधीन (मालिक)।

पूर्ण स्वाधीनता को पाने के लिए, चक्रवर्ती भी बनते हैं श्रमण।

श्रमण बनकर आत्म साधना से, संपूर्ण कर्मों से वे मुक्त।

जिससे वे शुद्ध-बुद्ध बनकर, पाते हैं आत्माधीन सुख॥ (4)

कर्म-विजयी ही होते आत्म-विजयी वे ही होते हैं विश्व-विजयी।

वे ही होते हैं परमस्वाधीन, इस हेतु श्रमण बना 'कनकनन्दी'॥ (5)

नन्दौड़, दिनांक 29.11.2015, रात्रि 10.45

यत्रयत्र भवेत्तृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै।

प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णाः सुखी भव॥3॥

अब यह वर्णन करते हैं कि, संपूर्ण काम्य कर्मों में अनादर करना रूप वैराग्य ही मोक्ष रूप पुरुषार्थ का कारण है, जहाँ-जहाँ विषयों की विशेष तृष्णा होती है वहाँ

ही संसार जान, क्योंकि विषयों की तृष्णा ही कर्मों के द्वारा संसार का हेतु होती, इस कारण दृढ़ वैराग्य का अवलंबन करके अप्राप्त विषयों में इच्छा रहित होकर आत्मज्ञान की निष्ठा करके सुखी हो।

तृष्णामात्रात्म को बन्धस्तन्नाशोमोक्षउच्यते।

भवसंसक्तिमात्रेण प्राप्ति तुष्टिर्मुहुर्मुहुः॥१४॥

उपरोक्त विषय को अन्य रीति से कहते हैं-हे शिष्य! तृष्णा मात्र ही बड़ा भारी बंधन है और उस तृष्णा मात्र का त्याग ही मोक्ष कहलाता है, क्योंकि संसार के पीछे आसक्ति का त्याग करके बारंबार आत्म ज्ञान से उत्पन्न हुआ संतोष ही मोक्ष कहलाता है।

केवली का स्वाधीन सुख

पक्खीणदिघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो।

जादो अणिंदियो सो णाणं सोक्खं च परिणमदि॥ (19) प्रवचनसार

(सो) वह सर्वज्ञ आत्मा जिसका लक्षण पहले कहा है (पक्खीणदिघादिकम्मो) घातिया कर्मों को क्षयकर अर्थात् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य इन चतुष्टय रूप परमात्मा द्रव्य की भावना के लक्षण को रखने वाले शुद्धोपयोग के बल से ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों को नाशकर (अणंतवरवीरिओ) अंत रहित और उत्कृष्ट वीर्य को रखता हुआ। (अहियतेजो) व अतिशय तेज को धरता हुआ अर्थात् केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त हुआ (अणिंदियो) अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों के विषयों के व्यापार से रहित (जादो) हो गया (च) तथा ऐसा होकर (णाणं) केवलज्ञान को (सोक्खं) और अनंतसुख को (परिणमदि) परिणमन करता है।

इस व्याख्यान में यह कहा है कि आत्मा यद्यपि निश्चय से अनंतज्ञान और अनंतसुख के स्वभाव को रखने वाला है तो भी व्यवहार से संसार की अवस्था में पड़ा हुआ है, जब इसका केवलज्ञान और अनंतसुख स्वभाव कर्मों से ढका हुआ है, तब तक पाँच इन्द्रियों के आधार से कुछ अल्पज्ञान व कुछ अल्पसुख में परिणमन करता है। फिर जब कभी विकल्प रहित स्वसंवेदन या निश्चय आत्मानुभव के बल से कर्मों का अभाव होता है, तब क्षयोपशम ज्ञान के अभाव होने पर इन्द्रियों के व्यापार नहीं होते हैं, उस समय अपने ही अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख को अनुभव करता है, क्योंकि स्वभाव के प्रगट होने में पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा अभिप्राय है।

समीक्षा-स्वभावतः प्रत्येक जीव अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्यादि, अनंतगुणों का अखण्ड पिण्ड है तथापि कर्मों के आवरण के कारण वे गुण आत्मा में ही गुप्त रूप में छिपे हुए हैं। कुंदकुंद देव ने समयसार में कहा भी है-

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियएणवच्छणो।

संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं॥ (67)

वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत्त होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जानता है परन्तु जब वही कर्मरज रूपी आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख, पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है। केवली (अरहंत सिद्ध भगवान्) के सुख का वर्णन पूज्यपाद स्वामी ने सिद्धभक्ति में निम्न प्रकार किया है-

आत्मोपादानसिद्धं, स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं,
वृद्धिहासव्यपेतं, विषयविरहितं, निःप्रतिद्वन्द्वभावम्।
अन्यद्रव्यानपेक्षं, निरूपमममितं, शाश्वतं सर्वकालं,
उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्यजातम्॥ (7)

सिद्ध का सुख (1) आत्मा से ही उत्पन्न होता है। (2) वह सुख स्वयं अतिशय युक्त होता है। (3) समस्त बाधाओं से रहित होता है। (4) अत्यंत विशाल व विस्तीर्ण होता है। (5) वृद्धि एवं हास से रहित। (6) इन्द्रिय विषयों से रहित स्वाभाविक होता है। (7) दुःख रूप विरोधी धर्म से सदा रहित है। (8) अन्य बाह्य निमित्त या समाग्रियों की अपेक्षा से रहित है। (9) उपमा रहित है। (10) अनंत है। (11) विनाश रहित है इसलिये सदा बना रहता है। (12) उस सुख का माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट है और वह अनंतकाल तक रहता है। (13) इन्द्रादिक के सुख से भी बढ़कर है इसलिए कर्मों के सर्वथा नाश होने से वह सिद्ध भगवान् के ही होता है।

नार्थः क्षुत्तृद्विनाशाद् विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या।

नास्पृष्टैर्गन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनैर्, ग्लानिनिद्राद्यभावात्॥

आतंकार्तेरभावे, तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्।

दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे, दूश्यमाने समस्ते॥ (8)

सिद्ध भगवान् के क्षुधा और तृष्णा के नाश हो जाने से अनेक प्रकार के रसयुक्त अन्न तथा पान से कोई प्रयोजन नहीं है। अशुचि अर्थात् अपवित्र पदार्थों के स्पर्श नहीं होने से सुगन्धित पदार्थों से प्रयोजन नहीं है। ग्लानि और निद्रादि के नहीं होने से कोमल शय्या से भी प्रयोजन नहीं, रोग की पीड़ा के अभाव होने के कारण उस रोग को दूर करने के साधन रूप औषधि भी व्यर्थ है, जैसे कि समस्त दिखाई देने वाले अंधकार के चले जाने पर दीप की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥ (27 गीता पृ. 76)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ (28)

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

स्वयंवेदनं सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।

अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः॥ (21 इष्टोपदेश पृ. 185)

यह आत्मा आत्म-अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रगट होता है यानि-जाना जाता है, वह शरीर के बराबर है, अविनाशी है-कभी इसका नाश नहीं होता। अनंतसुख वाला है ऊर्ध्व, मध्य, पाताल का यानि-समस्त जगत् का तथा जगत् के बाहर अनंत अलोकाकाश जानने-देखने वाला है।

सामग्रीविशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्। (11)

(प्रमेयरत्नमाला पृ. 83)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके, ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।

आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवंस्तथैवा॥ पृ.102

तथा सन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार है- हे भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है, तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यन्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

(पतञ्जली योगदर्शन 24 पृ.174)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से, शुभाशुभ कृतियों से जन्य पुण्य पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख-दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्ट, जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। (49)

पृ. 406

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को संपूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात् संपूर्ण पदार्थों को नियंत्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् संपूर्ण पदार्थों को ठीक-ठाक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्। (50)

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेक ख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से, पर वैराग्यजन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्। (55) पृ. 424

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघ्रच्छ परमा रोगा, संखारा परमा दुखा।

एतं जत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।। (धम्मपद 7 पृ. 65)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, इसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

आचार्यश्री की प्रतिज्ञा व ससंघ के नियम

मेरे (आ. कनकनन्दी)

एकांत-मौन-समता-निस्पृहता के कारण

(मुझे परम सत्य व स्वात्मा (मैं) की उपलब्धि चाहिए)

(मैं (आ. कनकनन्दी) 5 प्रकार के स्वाध्याय

के अतिरिक्त प्रायः मौन रखता हूँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

परम सत्य को मैं जानना चाहता हूँ...उसी हेतु शोध-बोध-चर्चा चाहता हूँ...

ध्यान-अध्ययन व मनन-चिन्तन...लेखन-प्रवचन व प्रचार चाहता हूँ...(स्थायी)...

परम सत्य में भी स्व-तत्त्व चाहता हूँ...चिदानंदमय आत्म तत्त्व चाहता हूँ...

शुद्ध-बुद्ध-परमानंद को चाहता हूँ...समता शांति व निस्पृहता चाहता हूँ...

ख्याति पूजा लाभ व द्वंद्व-फंदों से...राग द्वेष मोह व ईर्ष्या तृष्णा से...

संकीर्ण भेद-भाव पंथ व मतों से...अतः दूर रहता हूँ वाद-विवादों से...(1)...

आडम्बर ढोंग व दिखावा काम से...सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि नाम से...

संकीर्ण जाति भाषा समाज राष्ट्र से...दूर ही रहता हूँ मैं संक्लेश कामों से...

सर्वजन प्रसिद्ध ज्ञान व विज्ञान से...संकीर्ण कट्टर रूढ़ि परम्पराओं से...

लोकानुरञ्जन व भीड़ जुटाने से...दूर ही रहता हूँ (मैं) संकीर्ण स्वार्थ से...(2)...

परनिन्दा अपमान चिन्ता विवादों से... कर्तृत्व हस्तक्षेप व दादागिरी से...

छिद्रान्वेषण परोपदेशी पाण्डित्य से...दूर ही रहता हूँ गृहस्थ कार्यों से...

उक्त विषय संबंधी प्रश्न के उत्तर से...दूर रहता हूँ मैं गहिँत वचनों से...

अप्रिय कठोर युक्त अहित वचन से...वाद-विवाद कर तुच्छ वचनों से...(3)...

अनात्म अहितकर समस्त कामों से...दूर रहता हूँ मैं मन वचन काय से...

करना कराना तथा अनुमति से...दूर रहता हूँ मैं स्व-पर अहित से...

सांसारिक सभी काम अनंत बार किया...आत्म-उपलब्धि एक बार भी न किया...

संसार के सभी काम त्यागता हूँ भाव से... 'कनक' स्व-उपलब्धि हेतु प्रयत्न भाव से...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 29.11.2015, रात्रि 7.45

संदर्भ-

यत्रयत्र भवेतृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै।

प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णाः सुखी भव।।3।।

अब यह वर्णन करते हैं कि, संपूर्ण काम्य कर्मों में अनादर करना रूप वैराग्य ही मोक्ष रूप पुरुषार्थ का कारण है, जहाँ-जहाँ विषयों की विशेष तृष्णा होती है वहाँ ही संसार जान, क्योंकि विषयों की तृष्णा ही कर्मों के द्वारा संसार का हेतु होती, इस कारण दृढ़ वैराग्य का अवलंबन करके अप्राप्त विषयों में इच्छा रहित होकर आत्मज्ञान की निष्ठा करके सुखी हो।

तृष्णामात्रात्म को बन्धस्तन्नाशोमोक्षउच्यते।

भवसंसक्तिमात्रेण प्राप्ति तुष्टिर्मुहुर्मुहः।।4।।

उपरोक्त विषय को अन्य रीति से कहते हैं-हे शिष्य! तृष्णा मात्र ही बड़ा भारी बंधन है और उस तृष्णा मात्र का त्याग ही मोक्ष कहलाता है, क्योंकि संसार के पीछे आसक्ति का त्याग करके बारंबार आत्म ज्ञान से उत्पन्न हुआ संतोष ही मोक्ष कहलाता है।

निशामयति निःशेषमिन्द्रजोलोपमं जगत्।

स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुत्प्यते।। (39)

The seeker of the self regards the whole world as a product of illusion and is moved by the desire to atting to self realigation. If he ever becomes entangled in anything else he repents of it!

स्वाआत्मा संपत्ति की वृद्धि होने पर जो चिह्न प्रकट होते हैं उसे हे शिष्य तुम सुनो-

योगी शब्द अंतः दीपक होने के कारण उसे सर्वत्र जोड़ना चाहिए। जो स्व-आत्म-संवित्ति के रसिक/ध्याता है वह संपूर्ण चराचर बाह्य वस्तु को उपेक्षा रूप से देखता है। उसे हेय, उपादेय, ग्रहणीय एवं तेजनीय का ज्ञान होने के कारण इन्द्रजालियाँ (जादूगर) के द्वारा प्रदर्शित सर्प व हार के समान समस्त सांसारिक वस्तु प्रतिभाषित होती है। इसलिए वह संसार को इन्द्रजाल के समान अवास्तविक मानकर चिदानंद स्वरूप स्व-आत्म संवित्ति को चाहता है तथा स्व-आत्मा से अतिरिक्त किसी वस्तु में स्व-चित्त की प्रवृत्ति पूर्व संस्कार वश हो जाती है तब वह पश्चाताप करता है। वह दुःखी होकर सोचता है कि हाय मेरे से यह अनात्म कार्य कैसे हो गया।

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।

निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्॥ (40)

The Seeker after the self longs for solitude, preferring disraciation with men; if he has to speak to men for a purpose of his own, he puts it out of his mind as son as it is said!

“गुरुपदेशमासाद्य, समभ्यस्यन्नानारतम्।

धारवासौष्ठवाध्यान प्रत्ययानपि पश्यति॥”

आत्म-साधक आत्म-साधना के लिए स्वभाव से निर्जन गिरी, गुहा आदि में गुरु आदि के साथ रहने की अभिलाषा करता है और वहाँ भी रहकर जन-मनोरंजन कार्य, चमत्कार पूर्ण मंत्रादि प्रयोग तथा अनावश्यक वार्तालाप से निवृत्त होने का प्रयत्न करता है। सामान्य जन स्वार्थ वशात् संसारी लाभ-अलाभ संबंधी प्रश्न करते हैं जिससे साधक को साधना में बाधा पहुँचती है। इसीलिये जनसम्पर्क से रहित एकांत में साधना करने के लिए कहा गया है। लौकिक चमत्कार ध्यान के लिए, आत्म-साधना के लिए बाधक है। तत्त्वानुशासन में कहा भी है-

गुरु के उपदेशानुसार सतत् आत्मस्वरूप का अभ्यास करने वाला ध्यानी धारणा, सौष्ठव आदि ध्यान के प्रतियों का साक्षात् प्रतिक्षक करने लगता है अर्थात् जिस समय आत्मलीनता होती है उस समय ज्ञान की प्रकृष्टता के कारण उसे संसार का कोई भी पदार्थ अदृश्य प्रतीत नहीं होता है वह अपने आत्मानंद में स्थिर रहता है।

समीक्षा-प्राथमिक साधक के मन की चंचलता के लिए बाह्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी निमित्त बनते हैं। उन बाह्य निमित्तों से निवृत्त होने पर तज्जन्य चंचलता भी दूर होती है। कहा भी है-

विकीर्यते मनः सद्यः स्थानदोषेण देहिनाम्।

तदेव स्वस्थतां धत्ते स्थानमासाद्य बन्धुकरम्॥२२॥

स्थान के दोष से प्राणियों का मन शीघ्र ही विकार को प्राप्त होता है तथा वही मन रमणीय स्थान को पाकर स्वस्थता को धारण करता है-राग-द्वेष से रहित होकर आत्मस्वरूप में अवस्थित होता है।

मेरा लक्ष्य मुझे अवश्य प्राप्त होगा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का....., एकांत मौन.....)

महान् लक्ष्य को मैं पाना चाहता हूँ, अभी आंशिक तो आगे पूर्ण चाहता हूँ। स्वयं को मानना, जानना चाहता हूँ, पूर्ण रूप से स्वयं को पाना चाहता हूँ॥ (ध्रुव) इसी हेतु मैं स्वयं का विश्वास करता हूँ, सच्चिदानंदमय मैं (स्व) को मानता हूँ। मेरा ही ज्ञान मैं सदा करता हूँ, मुझे ही प्राप्त हेतु (मैं) यत्न करता हूँ। यही है मेरा परम पावन लक्ष्य, अन्य सभी इसी हेतु होते प्रयुक्त।

ध्यान-अध्ययन-तप-त्याग-संयम, यम-नियम व लेखन-प्रवचन॥ (1)

(भले) द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अभी नहीं उत्तम, जिससे लक्ष्य प्राप्ति की गति होती जघन्य। तथापि लक्ष्य मेरा पास (में) आ रहा है, लक्ष्य का व्यवधान (मेरा) घट रहा है। सुयोग्य बीज यथा होता अंकुर, धीरे-धीरे उसका बढ़ता शरीर।

योग्य शरीर ऋतु (को) प्राप्त होकर, पुष्पित फलप्रद होगा अंकुर॥ (2)

ऐसी ही परिणति (भी) होती आत्मा में, आत्म विशुद्धि से गुणस्थान बढ़े स्वयं में। इन्द्रिय ज्ञानातीत होती ये गति, आत्मानुभव से यह होती प्रतीति।

यथा चित्र लेखन या बाण अनुसंधान (में), तथा चित्त में लक्ष्य का होता निर्धारण। तथाहि मोक्ष का निर्धारण होता चित्त में, मोक्ष की उपलब्धि (भी) होती स्वयं में॥ (3)

अन्य भव्य भी पाये (हैं) ऐसा ही लक्ष्य/(मोक्ष), सर्वज्ञ कथित यह आगम में लिखित। निकट भव्य निश्चय से पायेंगे मोक्ष, आत्म उपलब्धि ही 'कनक' का परम लक्ष्य॥ (4)

महान् लक्ष्य को मैं.....

नन्दौड़, दिनांक 30.11.2015, रात्रि 8.05

यह कविता 'मन की शक्ति' मैक्सवैल माल्ट्ज से भी प्रभावित है।

संदर्भ-

सिद्धि एवं श्रेय मार्ग

कुबोध रागादि विचेष्टितैः फलं, त्वयाऽपि भूयोजननादि लक्षणम्।

प्रतीहि भव्य प्रतीलोम वर्तिभि, ध्रुवं फलं प्राप्स्यसि तद्विलक्षणम्॥ (106)

आत्मानुशासनम्

हे भव्य! तूने बार-बार मिथ्यात्व, अज्ञान एवं राग-द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादि रूप फल प्राप्त किया है उसके विरुद्ध प्रवृत्तियों सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय कर।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।

नयत्यवश्यं वचसामनगोचर, विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ॥ (10)

हे भव्य! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इंद्रिय दमन, दान और ध्यान की परंपरा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा। वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद को प्राप्त कराता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

दया-दम-त्याग-समाधि निष्ठम् नय प्रमाण प्रकृताऽऽत्माऽर्थम्।

अधृत्यमन्यैरखिलैः प्रवादैः, जिन! त्वदियं मतद्वितीयम्॥ (6)

युक्त्यानुशासनम्

हे वीर जिन! आपका यह अनेकांत रूप शासन अद्वितीय है। इसमें दया, दम, त्याग और समाधि में तपाता है। नयों एवं प्रमाणों द्वारा इसमें द्रव्य पर्याय स्वरूप जीवादिक तत्त्वों का अविरोध रूप से, सुनिश्चित असंभव बोधक रूप से निर्णय किया गया है एवं इसमें समस्त एकांत प्रवादों दर्शन मोहनीय के उदय से सर्वथा एकांतवादियों की कल्पित मान्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है।

हे आत्मन्! मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही है। अनंत अनंतदर्शियों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया है। वे अनंतज्ञान को प्राप्त करके पूर्ण रूप प्रत्यक्ष से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे अतिरिक्त कुमार्ग, दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग कहा है। आचार्य प्रवर समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

सदृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्म धर्मेश्वरा विदुः।

यदिय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति॥ (3)

सद्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है, इससे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं कुचारित्र ही कुधर्म है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है, ऐसा धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताया है। आचार्य उमास्वामी भी मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का प्रतिपादन करते हुए प्रथम पंक्ति में बताते हैं कि-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।। “तत्त्वार्थसूत्र”

Right belief, Right knowledge, Right conduct, these (Together contribute) the path to liberation.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र इन तीनों का सम्यक् संयोग रूप त्रयात्मक मोक्ष का मार्ग है।

“Self reverence, self knowledge and self control, these three alone lead life to sovereign power.”

हे मुने: ! आध्यात्मिक दर्शन के समर्थ प्रचार-प्रसारक कुंदकुंद स्वामी आध्यात्मिक जगत् की अद्वितीय कृति समयसार में भी विमुक्ति मार्ग का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

जीवादी सद्वहणं सम्मत्तं तेसिमथिगमो णाणं।

रागादीपरिहरणं चरणं ऐसा दु मोक्खपहो।। (162) समयसार

एसो दु मोक्ख पहो इत्येव व्यवहार मोक्ष मार्गः।

यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

रागादि परिहरणं चरणं-तेषामेव सम्बन्धित्वेन रागादि परिहारश्चरित्रं।

रागादि परिहरणं चरणं और उन्हीं के संबंध से होने वाले जो रागादिक विभाव होते हैं उनको दूर हटा देना सो सम्यक्चारित्र कहलाता है। हाँ, भूतार्थनय के द्वारा जाने हुए उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में ठीक-ठीक अवलोकन करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है और उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में जानना सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादिरूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना, निश्चय सम्यक्चारित्र है, इस प्रकार यह निश्चय मोक्षमार्ग है। हे भव्य! नेमिचन्द्र सिद्धांतदेव द्रव्यसंग्रह में निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार बताते हैं-

सम्महंसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।

ववहार णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।। (39)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण मानो तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो निज आत्मा है, उनको मोक्ष का कारण मानो।

रत्नत्रय व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय से रत्नत्रय रूप परिणित आत्मा ही मोक्षमार्ग है। स्वयं आत्मा ही निश्चय से मोक्षमार्ग किस प्रकार का होता है? इसका प्रति उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा है-

रयणत्तयं ण वड्डइ अप्पाणं मुड्दत्तु अण्णदवि यम्हि।

तम्हा तत्तियमइयो होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।। (40)

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता, इस कारण उस रत्नत्रयमयी जो आत्मा है, वही निश्चय से मोक्ष का कारण है।

कुंदकुंद स्वामी भी यह भेदा-भेदात्माक निश्चय-व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

दंसण णाण चरित्ताणी सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।

ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चव णिच्छयदो।। (5)

साधु को व्यवहारनय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों को भिन्न-भिन्न समझकर नित्य-सदा ही इनकी उपासना करनी चाहिए, अपने उपयोग में लाना चाहिए, किन्तु शुद्ध निश्चयनय से वे तीनों एक शुद्धात्म स्वरूप हैं, उससे भिन्न नहीं है ऐसा समझ लेना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पंचेन्द्रियों के विषय और क्रोधादि कषायों से रहित जो निर्विकल्प समाधि है उसमें ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों होते हैं।

णिज्जावगो ये णाणं वादो झाणं चरित्त णावा हि।

भवसागरं तु भविया तरंति तिहि सण्णिवायेण।। (900)

खेवटिया ज्ञान है, वायु ध्यान है और नौका चारित्र है। इनके संयोग से ही भव्य जीव भवसागर से तिर जाते हैं।

णाणं पयासओ तओ सोधयो संजयो य गुत्तियरो।

तिण्हंपि य संपजोगे होदि हु जिण सासणे मोक्खे।। (90)

ज्ञान प्रकाशक है, तप शोधक है और संयम रक्षक है इन तीनों के संयोग से ही अर्थात् मिलने पर ही जिनशासन में मोक्ष प्राप्ति होती है।

तवेण धीरा विधुणंति पावं अज्झप्पजोगेण खावंति मोहं।

संखीण छुदरागा दोसा उत्तमा सिद्धिगदिं पयांति।। (903)

धीर मुनि तप से पाप नष्ट करते हैं, अध्यात्म योग से मोह का क्षय करते हैं अतः वे उत्तम पुरुष मोह रहित और राग-द्वेष रहित होते हुए सिद्ध गति प्राप्त कर लेते हैं।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।

क्षमार्ज्वदयातोषं सत्यं पियूषवद् भज।। सू. 2 अष्टावक्रगीता

हे प्रिय! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान छोड़ दे और क्षमा, आर्जव, दया, संतोष और सत्य को अमृत के समान सेवन कर।

एको विशुद्ध बोधव्योऽहमिति निश्चयवह्निना।

प्रज्वाल्याज्ञानगहनं वीतशोकः सुखी भव।। सूत्र 9

‘मैं एक विशुद्ध बोध हूँ’ ऐसी निश्चयरूपी अग्नि से गहन अज्ञान को जलाकर तू शोक रहित हुआ सुखी हो।

निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतलाशयः।

अगाधबुद्धिरब्धो भव चिन्मात्रवासनः।। सूत्र 17

“तू निरपेक्ष है, निर्विकार है, स्व-निर्भर है, शांति और मुक्ति का स्थान है, अगाध बुद्धिरूप है, क्षोभ-शून्य है। अतः चैतन्य मात्र में निष्ठा वाला हो।”

चाहे आप पेशेवर या वीकएंड एथलीट हो, सेल्स प्रोफेशनल हो, उद्यमी हो, एकजीक्यूटिव हो, स्कूल टीचर हो, डॉक्टर हो या चाहे जो हो, अपनी दैनिक दिनचर्या में मानसिक रिहर्सल को शामिल करना जरूरी है। इसके खिलाफ कोई भी समझदारी भरा तर्क नहीं दिया जा सकता। प्रमाण बताता है कि आपको विभिन्न लाभकारी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इस औजार का इस्तेमाल करना सीखना चाहिए और इसके बाद नियमित रूप से इसे करना चाहिए। मैं जोर देकर कहना चाहूँगा कि यदि आप इस नीति का इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं, तो आप खुद को एक बहुत बड़े लाभ से वंचित रख रहे हैं। आप खुद को सफलता के एक बुनियादी, शाश्वत, सबसे विश्वसनीय मनोवैज्ञानिक औजार से वंचित रख रहे हैं। यह तो वैसा ही है, जैसे कोई कारपेंटर बिजली से चलने वाले उपकरणों के बिना कार्य करने का चुनाव करे। आप ऐसा कर तो सकते हैं, लेकिन क्यों करें?

मानसिक चित्रण इतना शक्तिशाली क्यों होता है

मैंने पाया है कि लोग इस बात को जितना ज्यादा समझते हैं कि यह इतनी अच्छी तरह कार्य क्यों करता है, उनके इसके इस्तेमाल की उतनी ही ज्यादा संभावना

होती है।

आपके भीतर का स्वचलित सफलता मेकेनिज्म एक बेहद जटिल स्वचलित लक्ष्य-आकांक्षी मशीन की तरह है, जो फीडबैक में मिले डेटा और संग्रहीत जानकारी का इस्तेमाल करके किसी लक्ष्य की ओर रास्ता बनाती है। यह मेकेनिज्म आवश्यकता पड़ने पर स्वयं ही दिशा में सुधार कर लेता है। लेकिन इस मेकेनिज्म को चलाने के लिए एक ही चीज की जरूरत होती है। आपके पास कोई लक्ष्य होना चाहिए, जिस पर यह निशाना साध सके। जैसा मशहूर गोल्फ प्रशिक्षक ऐलेक्स मॉरिसन ने कहा था, आपको किसी चीज को अपने मन में पहले स्पष्टता से देखना चाहिए, तभी आप उस चीज को कर सकते हैं। (जैसा पहले बताया गया था, इस नई अवधारणा का यह मतलब नहीं है कि आप एक मशीन हैं, लेकिन आपके मानसिक और शारीरिक कार्य एक मशीन करती है, जिसे आप चलाते हैं।)

जब आप किसी चीज को स्पष्टता से अपने दिमाग में देख लेते हैं, तो आपके भीतर का सृजनात्मक “सफलता मेकेनिज्म” कमान थाम लेता है।

फौलादी इच्छा शक्ति के जरिये कुछ करने का चेतन प्रयास न करें। चिन्ता करने और मन में बुग्री तस्वीरें देखने में न लगे रहे कि सब कुछ गड़बड़ हो सकता है। इसके बजाय आप तनावमुक्त हो जाये। आप दबाव और प्रयास से “इन चीज को करने” की कोशिश छोड़ दें। आप मन में उस लक्ष्य को देखते हैं, जिस पर आप सचमुच निशाना लगाना चाहते हैं और फिर अपने सृजनात्मक सफलता मेकेनिज्म को कमान थामने देते हैं। ऐसा नहीं है कि उसके बाद आपको प्रयास और कार्य नहीं करना पड़ता। लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाने के लिए मेकेनिज्म आपके प्रयासों का इस्तेमाल करेगा। लेकिन इस स्थिति में आप उस निरर्थक मानसिक संघर्ष से बच जाते हैं, जो तब उत्पन्न होता है, जब आप चाहते तो कोई और चीज हैं, लेकिन मन में किसी दूसरी चीज की तस्वीर बनाते हैं।

अपने सर्वश्रेष्ठ स्वरूप को खोजें

आपके भीतर का यही सृजनात्मक मेकेनिज्म आपको अपने सर्वश्रेष्ठ संभावित स्वरूप को हासिल करने में आपकी मदद कर सकता है, अगर आप अपनी कल्पना में उस स्वरूप की तस्वीर बनाये, जो आप बनना चाहते हैं और खुद को नई भूमिका में देखें। यह व्यक्तित्व के काया-कल्प की आवश्यक शर्त है, चाहे इसमें किसी भी थैरेपी का इस्तेमाल किया गया हो। आप बदल सके, इससे पहले किसी न किसी तरह

आपको खुद को एक नई भूमिका में “देखना” होगा।

मैंने लोगों को उनकी आत्म-छवि बदलते देखा है। बहरहाल, आज हमें जो दिख रहा है, वह मानव कल्पना से उत्पन्न होने वाली संभावित सृजनात्मक शक्ति की झलक भर है, खास तौर पर खुद से संबंधित तस्वीरों के बारे में।

(साइको साइबरनेटिक्स-मैक्सवेल माल्ट्ज)

आध्यात्मिक एक : मुझे मिल रहे लाभ अनेक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

आध्यात्मिक से विविध लाभ हो रहे हैं...आत्मविश्वास मेरा अगाध हो रहा है...
ज्ञान में भी वृद्धि मेरी हो रही है...आचरण भी सम्यक् मेरा हो रहा है...(स्थायी)...
इसी से ही मुझे मिली श्रद्धा व प्रज्ञा...मैं हूँ जीव द्रव्य मुझमें अनंत प्रज्ञा...
अनादि अनंत मैं हूँ सच्चिदानंद...अनंत दर्शन ज्ञान सुख व वीर्य...
राग द्वेष मोह व काम क्रोध रिक्त...ईर्ष्या तृष्णा घृणा क्षुधा तृषा रिक्त...
जन्म जरा रोग व मृत्यु से रिक्त... तन मन इन्द्रिय दिमाग (ब्रेन) रिक्त...(1)...
आत्मविश्वास मेरा इससे बढ़ रहा है...दीन-हीन अहंकार भी हट रहे हैं...
समता शांति निस्पृहता आ रही है...क्षमा सहिष्णुता विरागता आ रही है...
तेरा-मेरा भेद-भाव भी मिट रहे है...ख्याति पूजा लाभ भी घट रहे है...
संकल्प-विकल्प-संक्लेश छूट रहे है...ध्यान-अध्ययन मेरे बढ़ रहे है...(2)...
शोध-बोध व अनुभव बढ़ रहे है...गद्य-पद्य लेखन भी बढ़ रहे है...
अध्यापन व ज्ञानदान भी बढ़ रहे है...नये-नये चिंतन भी हो रहे है...
आत्म विशुद्धि भी मेरी बढ़ रही है...आत्मानंद की अनुभूति बढ़ रही है...
एकाग्रता संतुष्टि तृप्ति हो रही है...चारित्र्य की विशुद्धि अतः हो रही है...(3)...
अन्य से ये सब लाभ होना न संभव...सत्ता-संपत्ति-डिग्री से भी नहीं संभव...
ख्याति पूजा लाभ से भी नहीं संभव...इसीलिए 'कनक' को आध्यात्मिक श्रेय/(प्रिय)...
राजनीति विज्ञान संकीर्ण पंथ/(धर्म) से...दिखावा आडम्बर युक्त क्रियाकाण्डों से...
तर्क-वितर्क व वाद-विवाद से...संभव नहीं है परोपदेशी पाण्डित्य से...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 01.12.2015, रात्रि 10.00

(इस कविता संबंधी विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत प्रायः 400-500 आध्यात्मिक कविताएँ सत्य साम्य सुखामृतम् आदि पठनीय।)

